UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180703

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 81.6 / C49S Accession No G.H.670

Author चतुर्वेदी, रामसनक

Title मानस मुक्तावली / 1953

This book should be returned on or before the date last marked below

मानस सूक्तियाँ

लेखक—

रामसेवक चतुर्वेदी, "शास्त्री"

प्रस्तावना लेखक—

आचार्य पद्मनारायण, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

निदर्शना लेखक—

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य प्रकाशन समिति, भागलपुर।

आवरण चित्र—अमल सेन।

मुद्रक—शारदा प्रेस, भागलपुर।

प्रथम संस्करण—जनवरी १९४५।
वसन्त पञ्चमी
सं० २००१ वैक्रम।

प्राप्तिस्थान—
मंत्री—छेदीलाल शर्म्मा
हिन्दी साहित्य प्रकाशन समिति,
महावीर प्रसाद द्विवेदी रोड,
भागलपुर सिटी।

मूल्य—दो रुपये बारह आने

यह जीवन-यज्ञ पुरुष का
रह जाता निपट अधूरा
नारी हविष्य से अपने
करती न इसे यदि पूरा

भारतीय संस्कृति के नैष्ठिक कवि

स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद

की

पुण्य-स्मृति में

निवेदन

इस "मूर्च्छना" वल्लरी से काव्योद्यान की शोभा बढ़ेगी; मैं नहीं जानता; पर कुछ बढ़ सकी तो श्रम-साफल्य अवश्य समझूँगा।

और यह "मानस मूर्च्छना" भावुकों की अन्तस्तंत्रियों को झंकृत कर कहां तक मुद-सम्मूर्च्छित कर सकेगी, यह भी नहीं जानता, फिर भी शुभेच्छु मित्र-मंडल की प्रेरणा को सर्वथा अनुपेक्षणीय समझ कर प्रकाशन-प्रवृत्ति को निगाडित भी नहीं कर सका।

मैं उन सभी लोगों का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जो भी जैसी भी सहायता की है, जिसके परिणामस्वरूप इस "मानस मूर्च्छना" का प्रणयन-प्रकाशन हो सका।

—रामसेवक चतुर्वेदी

प्रस्तावना

अयि ! सत्य ! चिन्तनि ! ऊषे !
जीवन है कैसी उलझन ?
कह दोगी ? क्यों अलि को हैं
प्राणों से प्यारे बन्धन ?

इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे 'मूर्च्छना' के कवि की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति दोनों की ओर आकर्षण हुआ। एक बार इस संग्रह के सभी पद्यों को पढ़ गया। मन ने नम्र और आश्वस्त होकर कहा, आरम्भिक दुर्बलताओं के बीच में एक होनहार उदात्त कवि पल रहा है।

आरम्भ में प्रत्येक कवि प्रायः जीवन के प्रति अधिक भावुक होता है; फलतः उसकी अभिव्यक्ति भी अधिक मादक और रंगीन होती है। प्रौढ़ पाठक प्रत्येक कवि में जीवन-दर्शन देखना चाहता है, जीवन की कोई व्याख्या चाहता है; चाहे वह कोमल हो या सौम्य किंवा उग्र। सुलझा हुआ सहृदय सदा कहता है, कविता भावुकता से परे की चीज है; उसमें कोई तत्त्व की बात चाहिये; उसमें आत्म चिंतन, समाज-चिंतन, विश्व-चिंतन, विश्वातीत-चिंतन—सभी कुछ चाहिये। चिन्तनहीन कविता कविता नहीं, कोरा विनोद अथवा भावुकता का अतिरेक है। प्रत्येक समर्थ कवि, जब अभिव्यक्ति की पूर्णता पर पहुँचता है तो यही कहता है कि कविता मेरी आत्म-कथा है। 'मूर्च्छना' के कवि को देखकर मुझे निश्चय हो गया कि उसने भी इन प्रगीत-मुक्तकों में आत्मकथा लिखी है।

अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी 'मूर्च्छना' के कवि ने प्रकृति के चिर सुन्दर प्रतीकों को अपनाया है। ऋग्वेद के युग से लेकर छायावाद के आधुनिक कवि तक सभी प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा अपनी अनुभूति को व्यक्त करने का प्रयास कर चुके हैं। इसलिये प्रकृति-वर्णन राज-मार्ग

है, जिसके द्वारा प्रत्येक मरम कवि 'राष्ट्री' के भवन तक पहुँच सकता है। इसी लिये प्रकृति का विनियोग, प्रकृति के प्रतीकों का प्रयोग तथा प्रकृति-सुन्दरी के सौन्दर्य का चित्रण देखकर पारखी पाठक यह भलीभाँति समझ सकता है कि कवि की अनुभूति में कितनी व्यापकता है। 'मूर्च्छना' के कवि ने प्रकृति की इस विभूति को अपनी सम्पत्ति बना कर अपनी सफलता का परिचय दिया है।

महाकवि 'प्रसाद' में अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये ही दो विशेषतायें हैं कि वे सदा आत्म कथा ही लिखते हैं; और प्रकृति के द्वारा ही अपने को अभिव्यक्त करते हैं। प्रकृति के बिना 'प्रसाद' का आत्मानुभव अभिव्यक्त नहीं हो सकता और यदि उसमें से पुरुषार्थी कवि की, मौन सेवक की, आत्मानुभूति निकाल दी जाय तो उसकी प्रकृति जड और तेज-हीन हो जाती है। इसलिये उसका चिंतन और चित्रण एक हो गया, आत्मा और देह में अभेद हो गया है; जीवन और प्रकृति में समन्वय हो गया है। इसे ही कुछ लोग रहस्यवाद कहते हैं। 'मूर्च्छना' के कवि श्रीरामसेवक चतुर्वेदी ने भी इसी अभेद-सरणि को पकड़ा है, परन्तु एक भेद है, वे अपनी बात कहते हैं और उसे प्रकृति के माध्यम से कहते हैं जिसमें वे सफल हैं। परन्तु 'प्रसाद' जी जब अपनी बात कहते हैं तो उनकी बात में उनके समाजकी, उनके विश्व की, पूर्ण युग की बात आ जाती है। वे सदा सचाई के साथ केवल अपनी व्यथा-भरी कथा ही तो कहते हैं। परन्तु उनका अपनापन, उनका व्यक्तित्व इतना बड़ा हो उठा है कि उसमें आप से आप विश्व की अनुभूति आ जाती है। यही कारण है कि 'प्रसाद' का व्यक्तिवाद विश्व की गम्भीर समस्याओं का सफलतापूर्वक उत्तर दे सका है। परन्तु 'मूर्च्छना' के कवि का अनुभव अभी अपनी ही समस्याओं का उत्तर देता है और समानधर्मा सहृदयों को पर्याप्त सुख भी देता है। तथापि हमारी आशंसा है कि भविष्य में आपका यह आत्मानुभव-वर्णन विश्व की निधि बन जाय।

दुर्बलता की बात तो कह चुका परन्तु आपकी सबलता यह है कि, आप जब अपनी प्रेम कथा अथवा दुर्बलता का वर्णन करते हैं तो मस्ती में ऐसी बात कह बैठते हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि आप किसी ऋषि की सन्तान हैं। और उस प्रकाश की देवी उषा से पूछ बैठे हैं कि, तुम बताओ कि मनुष्य मुक्ति का अवसर पाकर भी बन्धन को क्यों प्यार करता है? यह लौकिक सत्यानुभव होते हुये भी अलौकिक आत्म दर्शन

की प्रेरणा देता है इससे मालूम पड़ता है कि जब कवि का शृंगार निखर कर प्रशान्त और निर्मल होगा तो उसमें "शारदोत्फुल्ल मल्लिका" वाली रात्रि के समान आपामर योगियों तक के रमाने की शक्ति आ जायेगी। इसी भावी रमणीयता की कल्पना कर के हम इस कवि का स्वागत करते हैं।

एक बात और। 'मूर्छना' की कविता में मादकता है, सौन्दर्य है, वेदना है, जलन है, शृंगार का सब कुछ है। इसमें रसिकों को प्रेम की अनेक रेखायें मिलती हैं। कभी भोलापन, कभी उद्दाम यौवन, कभी चुभनेवाला शृंगार और कभी निर्मल विरह, इतना भी विदग्ध गोष्ठी के लिये मोहक हो सकता है। तथापि आचार्यों की नीति के अनुसार उसमें उस तृप्ति और शान्ति की रेखा छूट गयी है जो इस जलन को बुझा सके; हमारी इस आलोचना का अभिप्राय यह है कि इन पंक्तियों में इस प्रकार की भावी उन्नति के बीज छिपे हुये हैं। कवि का अन्तिम छन्द लिख कर मैं अपनी मंगल-कामना करता हूँ :—

सौन्दर्य सुभग शशि तेरा
सौभाग्य बने जग का भी
यह मंगल रूप, जगत के
मंगल - प्रदीप मग का भी।

आचार्य-केशवस्वाध्याय-मंदिर
काशी
दीपावली २०११ वि०

पद्मनारायण आचार्य

निदर्शना

हिन्दी की आधुनिक काव्यधारा जब नये मोड़ पर मुड़ी तो उसमें कलकल-छलछल करती हुई कई कुल्याएँ दिखाई पड़ीं; जिनमें सर्वाधिक पीन-पुष्ट कुल्या थी स्वच्छन्दतावाद की। उसके कण उछल कर अन्यों में भी जा गिरते। पर कण ही, प्रणाली उसकी पृथक् थी। उस कुल्या का निष्केवल रूप वहीं था, जहाँ मानस की स्वच्छन्दता थी। बुद्धिबोधित स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद नहीं है। स्वच्छन्दतावादी उन्मुक्त मनोविलास में रमता है। जीवन और जगत के बन्धन से उद्विग्न हो वह प्रगतिवादी या रहस्यवादी नहीं बनना चाहता। यही स्थिति सर्वत्र—भाषा और शैली में भी—है। उसके उद्‌गार नवीन होते हैं, पर नवीनता का तात्पर्य उटपटाँग शब्द-योजना नहीं। अर्थात् वह प्रयोगवादी भी नहीं होता। उसकी नूतन सृष्टि विश्वामित्री नहीं। जाने-पहचाने शब्दों और सरणियों में वह नव्यता ला देता है या आप से आप वह आ जाती है। हेतु वही—मन का उन्मुक्त विहार, उन्मुक्त व्याहार नहीं। मन किसी भाव-धारा में निमग्नोन्मग्न होकर व्याहार करता है, मानस-लहरियाँ भाव की व्यवस्था मानकर चलती हैं। क्रोचे जिस प्रातिभ ज्ञान की गाथा गाते हैं वह अन्तस्तल की कोई भाव-व्यवस्था ही हो सकती है। इसी का शासन अभिव्यञ्जक की शब्द-योजना पर भी रहता है। इसलिए सच पूछिए तो कवि और कहनेवाला, अभिव्यञ्जना करनेवाला, स्वच्छन्दतावादी ही होता है। अन्य वाद वाले कुछ और भी होते हैं। प्रगतिवादी को चाहे समाजवादी कहिए, चाहे चाकचक्यवादी। इन सबका सांकर्य भी होता है। स्वच्छन्दनावादी रहस्यवाद के साथ भी जा सकता है, प्रगतिवाद के साथ भी जा सकता है, और प्रयोगवाद के साथ भी हाथ मिला सकता है। यदि कोई मूलतः स्वच्छन्दतावादी है तो उसका अन्य वादों के साथ आना-जाना काव्य को बिगड़ने नहीं देता, पर यदि वह अन्यवादों के चक्कर में अपना मूल रूप ही खो बैठता है तो उसकी रचना काव्य की सीमा का अतिक्रमण करने लगती है।

स्वच्छन्दतावादी परमार्थतः व्यक्तिवादी होता है। पर व्यक्तिवादी का यह अर्थ नहीं कि वह समाज का विरोधी होता है। वह अपने में रमता है अथवा उसका मन जहाँ रमता है उसी में वह लीन होता है। उसका मन किसी प्रकार का आवरण नहीं चाहता। दुराव-छिपाव वहाँ नहीं। उसमें बकना तो होती है, पर कुण्ठिता नहीं। वह अपने सहज रूप में अवस्थित रहना चाहता है। अतः आधुनिक युग का सच्चा कवि स्वच्छन्दतावादी है। वह सहृदय है। उसकी रचना में सर्वत्र हृदय लिपटा रहता है।

स्वच्छन्दतावादी कवि की तीन प्रकार की गति होती है—

(१) वहिर्वृत्ति में लीनता

(२) अन्तर्वृत्ति में रमण

(३) उभयविध वृत्ति का अवलंबन

जिसमें वहिर्वृत्ति की लीनता होती है वह व्यक्त प्रसार में रमता है और उसके सौन्दर्य के दर्शन करता-कराता है। जिसमें अन्तर्वृत्ति का रमण होता है वह भाव-भेद में मग्न होता है और दूसरों को करता है। उभयविध वृत्ति का अवलंबन करनेवाले की दोनों वृत्तियाँ होती हैं। हिन्दी की आधुनिक कविता में श्री सुमित्रानन्दन पंत में वहिर्वृत्ति की लीनता प्रधान है और श्री जयशंकर 'प्रसाद' में अन्तर्वृत्ति की रमणीयता। निराला ने उभयविध वृत्तियों का अवलंबन प्रायः समान रूप में किया है। ये तीनों कवि अपने मूल रूप में स्वच्छन्दतावादी ही हैं। पर अन्य वादों की ओर भी ये सहज ही प्रवृत्त हुये हैं। 'प्रसाद' जी ने रहस्यवाद की ओर विशेष आग्रह दिखलाया। वे अन्ततः रहस्यवादी ही रहे। रहस्यवाद की विशेष प्रवृत्ति होने पर दुराव-छिपाव-गोपन की वृत्ति जगती है। परिणामतः उसका प्रभाव अभिव्यक्ति पर भी पड़ता है। हिन्दी में 'प्रसाद' और महादेवी वर्मा दोनों में सर्वाधिक रहस्य की प्रवृत्ति है और दोनों की रचना सर्वाधिक गूढ़ हो गयी है। हिन्दी की सीधी-सादी रचना के अनन्तर गूढ़ता का आना उसका उत्कर्ष कहा जाता है। पर यह उत्कर्ष चाहे जितना श्लाघ्य हो किन्तु भावुक के लिए इससे कठिनाई भी उत्पन्न होती रही है।

व्यञ्जना या अभिव्यञ्जना को नियत करना चाहे भला न माना जाय, किन्तु नियतता के बिना उसकी ग्राहिका सहृदयता विशेष उलझन में पड़ जाती है। अतः नवीन कविता का परिपूर्ण उन्मेष हो लेने पर नियत-व्यञ्जना-विशिष्ट रचना की ओर कर्त्ताओं का जाना अनिवार्य था। यह कहना कदाचित् ठीक न समझा जाय कि 'प्रसाद' या महादेवी वर्मा

के परिष्कार की अपेक्षा थी और वह परिष्कार छुटभैयों द्वारा हुआ। पर यह कहने में कोई बाधा नहीं कि इन कवियों की गूढ़ता से घबराये भावुकों के मनस्तोष के लिए कुछ उभरते हुए कर्त्ताओं ने अपना कौशल सामने रखा। इस गूढ़ता से घबरा कर जैसे प्रगतिवाद की ओर कुछ लोग चले गये या जिन्होंने वाद का पल्ला नहीं पकड़ा वे प्रगतिशील हो गये और उन्होंने व्यक्तिवादी प्रवृत्ति छोड़कर समाजवादी प्रवृत्ति ग्रहण कर ली। वैसे ही व्यक्तिवादी स्वच्छन्दतावादी ने भी नया रूप धारण किया। जिन दिनों आधुनिक नवीन कविता गूढ़ता में प्रवृत्त थी, उन दिनों, चाहे हेतु जो भी रहा हो, गूढ़ता सार्वत्रिक थी—काव्य और शास्त्र दोनों क्षेत्रों में, कवियों और भावकों दोनों में। दोनों में परिवर्तन अनिवार्य था और कविता तथा आलोचना दोनों में परिवर्तन हुआ। कहने का तात्पर्य यह कि साहित्य की सरणि में कुछ परिवर्तन अपेक्षित थे, वे हुए।

स्वच्छन्दतावादी जब वहिर्वृत्ति में लीन होता है तो वह व्यक्त प्रसार के प्रति विशेष रूप से प्रवृत्त होता है। जैसा कहा जा चुका है, स्वच्छन्दतावादी मानस-कवि होता है। अतः सृष्टि का सौन्दर्य वह निरक्षेप नहीं देख पाता। प्रकृति के व्यापारों में मानव-व्यापारों का, अनुभूति-विशिष्ट मानव-व्यापारों का, आरोप कर लेता है। अनुभूति-विशिष्ट व्यापारों के आरोप की दृष्टि से कुछ ऐसे दिखाई देते हैं जिन्हें सृष्टि में प्रणय ही प्रणय दीखता है। 'प्रसाद' ने अपने आरोप प्रणय-पोषित ही किये हैं। कुछ ऐसे भी दिखाई देते हैं जिनका आरोप प्रणय तक ही परिमित नहीं होता। पर होता है वह भी प्रेम ही। दाम्पत्य-प्रेम उसकी सीमा नहीं होती। पहले प्रकार के कवि को 'प्रणय कवि' और दूसरे प्रकार के कवि को चाहे तो 'प्रेम-कवि' कह सकते हैं। जिज्ञासा होती है कि प्रकृति के प्रति इनका ऐसा ही राग क्यों होता है? यह कह आए हैं कि स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवादी होता है। जीवन के प्रवाह में उसे कोई सौन्दर्य साक्षात्कृत होता है। उस सौन्दर्य में लोक-सामान्य लक्षण न पाकर वह प्रकृति के अनन्त प्रांगण में उस अलोक-सामान्य सौन्दर्य का प्रतिमान खोजता है और अनुभव करता है कि सौन्दर्य का कोई अक्षय भाडार है जो सारी सृष्टि में व्याप्त है। जागतिक या व्यक्तिगत सौन्दर्य किसी अखण्ड सौन्दर्य का अंश या अंग मात्र है। यहीं पर रहस्योन्मुख कवि किसी अव्यक्त सत्ता का आभास प्राप्त करके उसका रहस्य-दर्शन करने-कराने में प्रवृत्त होता है और अरहस्यदर्शी अपने को सृष्टि के सौन्दर्य तक ही परिमित रखता है। वह सौन्दर्य-लोक का मार्मिक द्रष्टा मात्र होता है।

मंत्रद्रष्टा या ब्रह्मद्रष्टा ऋषि बनने की उसमें इच्छा नहीं होती। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि एक लोक में किसी अलौकिक का सौन्दर्य देखता है और दूसरा लोक में आलौकिक सौन्दर्य मात्र। वह अलौकिक सौन्दर्य किसी अलौकिक सत्ता का है, इससे उसे कोई प्रयोजन नहीं। अलौकिक सौन्दर्य इसलिए अलौकिक है कि वह सामान्यतया लोक में उपलब्ध नहीं होता। अर्थात् वह लोक का विशेष सौन्दर्य देखता है।

विशेष सौन्दर्य-दर्शन की प्रवृत्ति होने के कारण उसकी रचना में अभिव्यक्ति भी विशेष प्रकार की होती है। सौन्दर्य-दर्शन के विशेष प्रकारों के ही कारण इन कवियों के स्वरूप में शैलीगत विभेद हो जाता है। क्रोचे ने जो आकृति में ही सौन्दर्य माना है, वस्तु में नहीं, उसे समझने के लिए इन कवियों की सौन्दर्य-दर्शन-सरणियों की विभिन्नता बड़े काम की है। वस्तुगत सौन्दर्य और आकृतिगत सौन्दर्य के सम्बन्ध की धारणाओं में तात्विक अतर सामाजिक और वैयक्तिक दृष्टिकोण का भेद है। सामाजिक दृष्टि से जब सौन्दर्य की व्याख्या करनी होगी तो उसे वस्तुगत भी मानना पड़ेगा। पर वैयक्तिक दृष्टि से सौन्दर्य का विचार करने पर वह आकृतिगत ही दिखाई देगा। छोटी-छोटी आँखें यदि किसी को सुन्दर लगती हैं तो यह उसकी व्यक्तिगत रीझ-बूझ है। पर बड़ी आखें बहुतों को अच्छी लगती हैं,—रहीम कहते हैं सब को अच्छी लगती हैं—

'ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि
आँखिन को सुख होत।'

अभिव्यक्ति वैयक्तिक होकर काव्य-परम्परा अर्थात् सामाजिक मान्यता का तिरस्कार भी कर सकती है और उसे थोड़ा-बहुत ग्रहण भी किये रह सकती है। नूतन उद्भावना करके उसे सवर्धित भी करती चल सकती है। 'प्रसाद' ने परम्परा का त्याग औरों की अपेक्षा कम किया है, नूतन उद्भावना भी औरों की अपेक्षा परम्परा-पोषित ही उनमें अधिक है। अगरेजी परम्परा का ग्रहण 'पत' ने जितना अधिक किया, उतना 'प्रसाद' ने नहीं। भारतीय सरणि से विच्छेद 'पत' में अधिक है, 'प्रसाद' में कम। 'पंत' में गूढ़ता यदि कहीं आई है तो अन्य काव्य-सरणि की अनुगामिता के कारण। यदि कोई ऐसा हो, जिसमें अन्य काव्यसरणि की अनुगामिता न हो और रहस्य की प्रवृत्ति न हो तो यह स्वाभाविक है कि उसकी रचना सर्वजनग्राह्य हो सकती है। 'मूर्छना' की रचना ऐसी ही है।

विरह-काव्य लिखने की प्रवृत्ति तो पुरानी है। गीत-तत्व प्रधान विरह काव्य भी लिखे गये। पर पुराकाल में विरही की उक्तियाँ कवि की उक्तियों के रूप में नहीं होती थीं। विरह का निवेदन दूत या दूती करे। कालिदास ने इस शास्त्रीय मर्यादा का संग्रह-त्याग करने में बड़े चातुर्य से काम लिया। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्' का उद्घोष करके भी उन्होंने पुराण-पराङ्मुखता ही नहीं दिखलाई है। मेघदूत क्या कहेगा किसी ने नहीं सुना। विरह-निवेदन यक्ष ने स्वयं कर दिया। पर किससे? दूत से विरहिणी से नहीं। विरही यक्ष ही है। व्यक्तिगत अभिव्यक्ति उनकी नहीं। यक्ष कालिदास का प्रतिनिधि ही हो, हुआ करे। प्रतिनिधि-मुखेन ही उसका विरह-निवेदन है। उनका प्रतिनिधि यक्ष और यक्ष का प्रतिनिधि मेघ। हाँ, यक्ष का प्रतिनिधि जड़—अचेतन है यह दूसरी बात है। अस्तु। हिन्दी में विरह-काव्य ऐसा भी लिखा जाने लगा जिसमें संबोध्य प्रिय होता है। हिन्दी की पुरानी कविता में भी स्वच्छन्दतावादी घन-आनन्द आदि ऐसे हो चुके हैं और छाया—रहस्ययुग में तो बहुतों ने ऐसी रचना की है। यह फारसी की अमरबेल है जो हिन्दी में आ लगी है। प्रसाद का 'आँसू' विरह-काव्य उसी फारसी-सरणि में लिखा गया है। कहीं-कहीं उसका फारसीपन संस्कृत आवरण में भी उभर ही आता है, पद-विन्यास, पदावलि, साकेतिकता सब में। जो भी हो, उसका कुछ परिष्कार भी उन्होंने किया और उसमें छन्द की नवीनता भी दिखलाई। 'आँसू' का छन्द 'प्रसाद' के नाम से ही विख्यात हो गया। 'प्रसाद' का यह प्रयास बहुत ही कवि-प्रिय हुआ और कई समर्थ कवियों तक ने इनके इस छन्द का ग्रहण किया। सरणि भी ली। फिर छुटभैयों का उधर जाना तो स्वाभाविक ही था। 'मूर्छना' में दो छन्दों का प्रयोग है—एक 'आँसू' का 'प्रसाद'-छन्द और दूसरा 'कामायनी' से लिया गया है। 'मूर्छना' का कवि 'प्रसाद' से आपादमस्तक प्रभावित है।

पर इस प्रभाव में विशेषता है। फारसीपन इसमें 'आँसू' की भाँति नहीं है। न 'छिल-छिल कर छाले फोड़े' मल-मल कर मृदुल चरण से' है और न 'शशि-मुख पर घूघट डाले अंचल में दीप छिपाए' ही। न 'परिरंभ-कुम्भ की मदिरा निःश्वास-मलय के झोंके' है और न 'मानस का सब रस पीकर लुढ़का दी तुमने प्याली' है। यह परिष्कार कवि ने जान-बूझ कर नहीं किया है और न 'प्रसाद' से बढ़ जाने की स्पर्धा में उसने ऐसा किया है। यह आप से आप हो गया है। अंगरेजी और फारसी की रचना

के बहुल आलोडन से परिपोषित उसका पाडित्य नहीं है। सौन्दर्य का दर्शन उसने किया है। और उसकी अभिव्यक्ति सहज की है। इस रचना का यही महत्व है। 'मूर्छना' के कवि और उसकी कविता के स्वरूपाकन के लिए, उसके स्वकीय महत्व को प्रदर्शित करने के लिए ही पूर्वगामी निदर्शना करनी पड़ी। 'मूर्छना' में स्खलन हो, हुआ करे, पर उसका यह गुण या उन्नयन ध्यान देने योग्य है। कवि की गति-पद्धति अच्छी है, उसका विकास हो—

शिवास्ते पंथानः सन्तु ।

वाणी-विताल
ब्रह्मनाल, काशी, प्रबोधिनी
२०११ वैक्रम

—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

यह उषा नहीं, ज्वालाएँ
जलते मेरे जीवन की
जल रही मेघ सी काया
मेरे ही नवयौवन की

मणि-मुकुर दिवस-लक्ष्मी का
सन्ध्या-कर से जो छूटा
घन तम की कठिन शिला पर
वह खण्ड-खण्ड हो फूटा

मृगमद से लीपे नभ में
बिखरे उसके ही टुकड़े
हैं विहँस रहे अपनी ही
आभा से धो धो मुखड़े

उठ जादूगरनी ऊषा
उनको समेट लेती है
कर वैसा ही दिन-श्री को
फिर मुदित भेंट देती है

शशि का प्रसून कुम्हलाता
बेलाएँ बीती जातीं
जब तरुण उषा की किरणें
मृदु से मुसुकाती आतीं

ऊषे ! असीम सुन्दर हो
यह प्रकट सत्य है वैसा
सौन्दर्य क्षुद्र जीवन का
अन्तर्निगूढ़ है जैसा

आर्ये सत्य ! चिरन्तन ! ऊषे !
जीवन है कैसी उलझन :
कह देगा क्यों आलि को है
प्राणों से प्यार बन्धन ?

जिसका स्वरूप सन्ध्या है
पर रूप निशा कहलाता
तो वह स्वयं ले आती
राकेश-कुसुम कुम्हलाता ?

रवि के अनुरक्त करों से
छू गई तनिक सकुचाई
मुक ताल-सलिल में सन्ध्या
लखती कपोल-अरुणाई

छवि के, शोभा के मुख पर
खिँचती विषाद की रेखा
कुछ भी बिगाड़ पाती क्या
सौन्दर्य ? किसी ने देखा ?

गिरती भी रवि की किरणें
क्या होती आभा-सूनी ?
बाधित भी सुन्दरता की
शोभा हो जाती दूनी

जलता भी दिवस निशा को
पीयूष-कुण्ड दे जाता
हिम-शीत उसी रजनी से
दिन पावक-मंडल पाता

लालसा - चाँदनी छिटकी
अरमान - प्रसून खिले थे
वय के वासन्त विपिन के
भू पर न द्वार खुले थे

अरविन्द छुपे मुख-छवि में
थे खञ्जरीट नयनों में
झुक रही राजहंसी थी
नव-भार-थके चरणों में

श्यामा के घन-अंगों में
चंचला चमक खो जाती
उसके अबोल यौवन की
चिर शान्ति भंग हो जाती

लावण्य-शैल पर हिमकर
था यौवन का उग आया
माधुर्य-सिन्धु जो सोता
वह भी महिमा अँगड़ाया

उसकी लवङ्ग-लतिका में
यौवन-प्रसून था फूला
अलबेली हेम-लता पर
डाले मनोज था झूला

मेघों की चूनरवाली
वह सान्ध्य शैलमाला थी
हाँ, सोम-सुधारस-प्यासी
किम्बा निर्जर बाला थी

तुम आ जातीं जीवन में
मंगल प्रभात आ जाता
लंबी नैराश्य-निशा का
हिमकर प्रतीक खो जाता

आई मेरी भी रजनी
पर दुख की कहाँ सिगनी ?
ऊँघे सुनते नभ-तारे
पर शेष न हुई कहानी

मधु-लता एक जीवन को
मेरे भी मिली सुहानी
जिसके अनन्त यौवन की
केवल दो रहा कहानी

जिस सीमा तक यौवन की
उस पर थी चढ़ी लुनाई
फूलों से दबती बेला
वैसी थी कभी न आई

आमूल फूल हों जिसके
वह ऐसी ही डाली थी
रस पोर-पोर हो जिसके
ऐसी फूलोंवाली थी

आकूल मधुद्रव जिसमें
वह थी तरङ्गिणी ऐसी
जिसने धनु को मोड़ा हो
थी चढ़ी शिञ्जिनी वैसी

सन्ध्या ने जिसे सँवारा
वैसी सदभ्र-माला थी
रंगों ने जिसे निबाहा
वैसी अनङ्ग-शाला थी

आतीं क्यों काली रातें
दिन की जलती छाती क्यों ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
ऊषा हँसती आती क्यों ?

मेरे जीवन में पहले
तुम जैसे भी आ जातीं
मैं तो निहाल हो जाता
तुम पूजा तो पा जातीं

आँखें सब कुछ पा जातीं
मन आँखों में आ जाता
रस भर जाता जीवन में
जीवन-सरोज खिल जाता

हाला तेरे अधरों की
दो घूँट कहीं मिल जाती
तो तेरी मधुशाला की
क्या दीवारें हिल जातीं ?

मित-अमित नयन - रेखाएँ
आकोण शोण हो जातीं
बोझिल हो जातीं आँखें
पलकें नीचे झुक जातीं

मिलने सिकता-सागर में
रसवन्त स्रोत आ जाते
जीवन के रिक्त कणों को
मधु से, मद से, भर जाते

सूखे अधरों के प्याले
मधु से गीले हो जाते
मधु का सुरंग छा जाता
हिमकर पीले पड़ जाते

वैभववालों की दुनियाँ
क्या कभी उदार बनेगी ?
सुख के सुकुमार करों से
क्या नाव कठोर चलेगी ?

मन की चाही ऐसी क्या—
जो बात वही होती हो
किसकी शरमीली सी आँखें
छुपके न कहीं रोती हों

वय के न, सुछवि-भर से ही
तनुलता सिहरती ऐसी
मलयानिल-कंपित सर की
हो वीचि विहरती जैसी

मुक्तालंकृत कमलों पर
पहले जुड़ जातीं आँखें
फिर सकुच फटे दाड़िम पर
मन की हिल जातीं पाँखें

श्यामे, तेरे पदतल के
नख-नखत-कुंज में मेरा
मानस-मयंक कर बैठा
निष्पन्द अटूट बसेरा

सन्ध्या सोती चरणों में
नक्षत्र-भूषणा ऐसी
माणिक की कोमल लतिका
हीरक-सुमना हो जैसी

विदलित दाडिम के दाने
हो गए अचूक अहेरी
बन्दिनी बनी पलकों में
लालसा - मांसिका मेरी

बन्दिनी अशोक-दलों में
थी कुन्दमाल की माया
मित पुण्डरीक यौवन का
अलि-पुञ्ज खींच था लाया

वे मीन-सलोनी आँखें
थी मृगी-गेह में खेली
तिस पर अमोघ मेधाएँ
वे खंजगीट से ले लीं

सुन्दरता की सरि बहती
थी शैलों में टकरा के
नग पर चढ़ जाता पानी
सरि बढ़ती बल खा-खा के

किसलय-अंचल हिलने से
थे कुमुद संकुचित झलके
दो कंज सभृंग उगे थे
शोभा के, वे-इंठल के

भुज-मूल कभी उठता तो
छवि-शैल सौंस लेता था
फिर कनक-मेघ सा पल में
गिर गिरि को ढँक देता था

चंचल घन-से परदे में
आभा-डूबी चपला सी
उत्पल-निकुञ्ज में फूले
साकार उषा अमला सी

हिम ऋतु के पीले दल पर
खिँचती वसन्त-रेखा सी
छा गई छटा आँखों में
विधु की विकास-लेखा सी

कमनीय द्वितीय कला सी
शशि की तनुलता तुम्हारी
फूली गंकेश-कुसुम ले
इतनी शोभा ! बलिहारी !

वह कैसी खुले कमल पर
खिलती जोड़ी खजन की
वह कौन कौतुकी ? जिसने
डाली डोरी अंजन की

थे हाथ मँढे मँहदी से
आँखों मे लगते अंजन
जाने किसने बाँधे थे
उनमे, चरणों मे बधन

घूँघट-विहीन छवि उनकी
यदि देख स्वयं गका ले
शशि चूर-चूर हो जाए
नख देख नखत विष खा ले

थी तरुण सिन्धुगा बहती
पुलिनों से बँधी सलोने
थे भरे मनोज-लता के
मधु-रस से दोनों दोने

उपकण्ठ सुभग सरिता के
सारंग रहे अकुलाते
उन्मुख सुजात पकज थे
अलि-पिहित बेह-से जाते

चपक सी गोरी बाहे
कच-वारि निचोड़ रही थी
किम्बा सित फूल विजालयों
घन-तरु से तोड़ रही थी

मोहन मिलिन्द था बैठा
नालनी के मुख पर तिल सा
शोभन मुख-मंडल उसका
कुछ और गया था खिल सा

प्रस्वेद – विन्दु – मणि – मंडित
था बदन मनोहर वैसा
अम्बुज खिलनेवाला हो
ले मधुर ओस-कण जैसा

शैशव-यौवन दोनो ही
उस छवि मे खेल रहे थे
दो स्रोत सुधा-मधुरस के
मोहन कर मेल रहे थे

वह कनक-रूप मनहर था
वे आँखे मीन-सुघर थीं
चंचल सुहासि होने से
मानस में गई उतर थी

दर्का दगर दाड़िम की
ले मुक्तामाल खड़ी थी
जिस पर सुकुमार सुए की
रसना निष्पन्द पड़ी थी

मेरे उनके अन्तर में
प्राचीर महान बना था
इस लिए दृगों का सुख भी
हो रहा मुझे सपना था

उस मधु-शोभा के पथ में
थी पावस की हरियाली
रंगीन-सुरा-शोभित थी
जैसे पन्ने की प्याली

थी पावस की हरियाली
किम्वा साकार पुलक था
सन्ध्या सा किसी सुमन का
जिस पर मन गया ढुलक था

तल्लीन पवन था जितना
व्यालोल बाल छूने में
तन्मय भुजंग-मंडल था
पवमान पवन पीने में

उन चचल मेघ-दृगों में
संयत मधु विन्दु भरे थे
जो किसी प्रेम-शंकर की
शोभा पर नहीं टरे थे

वह सन्निवेश शोभन था
दीप्यन्त पञ्चभूतों का
सन्देश-विन्दु बधन था
शुक-पिक-मिलिन्द-दूतों का

हैं बन्ध अम्बुधर वे ही
जो वारि वहा जाते हैं
जिनमें कि शम्भु शैलों के
निर्बाध नहा पाते हैं

तुम चमक चौंक उठती हो
मेघों की घन काग में
हो कौन अलखनन्दा सी
कालिन्दी की धारा में?

सन्ध्यावाले नभ-तल में
संभ्रान्त शुभ्र तारा सी
चू पड़ी मरुस्थल में हो
स्वर्गंगा की धारा सी

अवयव कमनीय कला के
नवनीत पुनीत अमल है
नीले सुरम्य अम्बर में
गुंफित तारों के दल हैं

तुम क्षीण कला सी शशि की
सिकुड़ी निदाघ-मग्निता सी
हो स्नेह-सलिल-परिवंचित
दरभिन्न कुन्द-कलिका सी

*

*

जिस दिन कदम्ब-कानन में
थी बजी प्रेम की बंसी
उस दिन दौड़ी आयी थी
मेरी राधा कलहंसी

अधखुली-खुली थीं आँखें
आनन्द-सरोज खिले थे
प्रच्छाय कुंज में जिस दिन
हम दोनों मौन मिले थे

जब इन्दु अमंवृत आया
चन्द्रिका-वारि से धुल के
मृदु से मानस लहराया
थे रोम हमारे पुलके

कुसुमित कदम्ब-कानन का
वैभव था बँधा पुलक में
आनन्द-सिन्धु बँध पाता
कैसे लघु सेतु—पलक में

चंचला चीर कब आई
अंबुद-संकाश अलक से
मुँद गई मंद की आँखें
उस छवि की एक झलक से

जिस दिन मेरी मधुराका
उतरी मेरे मधुवन में
थीं खड़ी भेर वल्लरियाँ
मधु विन्दु सुमन-से मन में

खग-कुल कल कूज उठे थे
उत्सव था भवन-भुवन में
परिवर्तित शूल समूचे
थे हुए प्रफुल्ल सुमन से

पीयूष-हिमांशु उगा दिन
फूला सन्ध्या-वेला में
उद्वेल सिन्धु लहराया
मृदु किरणों के मेला में

उस प्रकृति-खंड में मुद के
सब भाव लगे थे उगने
थे लगे कपोत सुखों के
चमकीले दाने चुगने

निर्व्याज व्यजन पल्लव के
संस्तर कोमल किसलय थे
फूलों की झालरवाले
प्रच्छाय निकुञ्ज निलय थे

कामना-वेलियाँ पल में
थीं लगीं मरन्द चुवाने
अरमान-भृंग फूलों के
थे दाने लगे बनाने

सुख आँखें लूट रही थीं
सिहरन थी हुई हृदय में
जब लोचन चार हुए थे
विह्वलन थी हुई मलय में

सन्ध्याओं के सम्पुट मे
तारों की मुक्ता-मणियां
जैसे अपोढ़ पल्लव में
थीं गुथी कुन्द की कलियाँ

दो कंढ़े कंज कंचन के
निस्तन्द्र चन्द्र को जब से
हैं देख चुके फूले क्या ?
मुँह मूँद पड़े हैं तब से

शैशव-यौवन-संगम की
गोरी अडोल तरुणाई
यौवन-यमुना मे लेती--
थी राधा सी अँगड़ाई

वह कुन्तल-भार सुरभि सा
मुँह लगा चूमने मन का
वह मुग्ध हास भी मेरे
मधुमास बना जीवन का

अपरूप रूप की मदिरा
दौड़ी मेरी नस-नस में
यह हृदय-सरोज हमारा
था सराबोर मधु-रस में

आहत था हृदय हमारा
उनको था खेल हँसी का
फूलों को घाव मिली थी
कलियाँ थीं बनीं इषीका

क्षण में उशीर-शीतल थीं
जल उठी अनल सी आँखें
फूलों की बनीं चिताएँ
कोमल तितली की पाँखें

पलभर ही थी पावस की
हरियाली मन में दौड़ी
पल भर ही डालें झूमीं
जीवन-रसाल की बौरी

पलभर ही थी आशा की
सुकुमार कली खिल पाई
शीतल शशि की पी पाए
प्यासे चकोर परछाईं

जिस छवि ने छेड़ी मुरली
वह रही होश में अपने
वे – सुध मेरी आँखों में
जब लगे उतरने सपने

घनसार-शीत अंगों में
ज्वाला थी आशीविष की
पीयूष-विन्दु-वन्दित थी
मादन मधुवेली जिसकी

जो शीतल शशि की किरणें
चूमने चकोर चला था
सँवल होंगे अंगोर
कब जान सका ? पगला था

हलचल जीवन-अंबुधि में
थी हाहाकार हृदय में
घन-विन्दु-माल आँखों में
पावक निर्धूम मलय में

फूलों की माल गले की
जंजीर बनी रे ! मन की
मानवी मंजरी डोली
रशना गूँजी गुंजन की

प्रच्छन्न कुसुम-अंशुक से
शूलों की डाल छबीली
मैंने ज्यों घूंट गरल की
पीयूष-पिहित थी पीली

सुख देख जिसे फूला था
थी केवल बेलि कँटीली
परिरंभ-पिपासु भुजाएँ
हो गईं लिपटते ढीली

जो मणि थी और किसी की
बन गई रंक की माया
मन रोने लगा हमारा
जब चन्द्र चूमने आया

तब अवच कथा बन जाती
रे भूल अचेतन मन की
जब स्वयं समागत कोई
निधि बन जाता जीवन की

आनन्द-बेलि फूलों की
दुर्वार व्यथा रे! मन की
हो गई सिन्धुगा कोई
वेदना सिन्धु-जीवन की

जब सन्ध्या की लाली में
दिन लोल गोल ढलता है
जाने किसकी ज्वाला में
किसका कपोल जलता है

मूर्च्छना अछूत किसी की
रागिणी बनी जीवन की
आसक्ति अपूत हमारे
बन गयी त्रिवेणी मन की

जिस दिन मेरी अनुराधा
थी खिली निशीथ-नयन में
उस दिन मयंक था मेरे
मानस का उगा गगन में

जिसमें शशि ने खेला हो
वह थी निशीथिनी ऐसी
जो बँधी कूल-बाहों में
थी वीचि-मालिनी वैसी

जिस दिन दो सुमन मिले थे
मधु मे भीगी छाया में
हँसमुख मयंक आया था
जिस रजनी की माया में

थे पीत पात मधु-भावित
थे लगे पलाश मलोने
तरु – वेलि – व्रतति – वल्लरियाँ
थी गजेंर लगी पिरोने

घन-चिकुर-तिमिर छाया में
निःश्वास मलय थे मिलते
शशि की शीतल छाया में
विश्वास-कुसुम थे खिलते

किंचित कंपित पल्लव में
आवर्जन-मंत्र निहित था
ईषद् विलोल किसलय में
साकूत कहीं इंगित था

थे सुमन सुहास बिखरते
मन था अंचल फैलाए
उज्ज्वलता धूलि-कणों में
मिल के न म्लान हो पाए

दे गई निशा शशिवाली
बस केवल काली रातें
विष घोल गई जीवन में
वे कपट-सुहानी बातें

अब कोरे दिवस विरह के
आते हैं ऐंठे ऐंठे
जिनका मुँह देखा करता
हतभागा बैठे बैठे

आई थी स्वयं कहीं से
छवि-माल बेलि में छूटी
तरुवर को किसी अभागे
वन के प्रवञ्चना लूटी

मुँह सिए झेलनी पड़तीं
पथ में आई विपदाएँ
सह लें चातक जितनी भी
घन बरसा ले कलकाएँ

मधु ने जिसको झकझोरा
वह सरला की हिचकी थी
जिसमें टिकाव हो थोड़ा
वह सरला की सिसकी थी

*

चंचल वसन्त की शोभा
आती ही क्यों जीवन में?
सुख छीन चला जाती जो
मिलता रे! सूनेपन में

सोचा सिमटी बाहों में
मैं बाँध वसन्त-छटा लूँ
सोचा सरोज-सीपों में
मधु सिन्धु अमेय आँटा लूँ

चाहा मधुगलापा की
काकली कंठ में ले लूँ
चाहा तिल में तरुणी के
कुछ स्नेह दृगों को दे लूँ

मधु वर्षन्ती श्यामा की
छाया में क्षण भर सो लूँ
चाहा था पुण्यविभा से
मैं कलुष अपावन धो लूँ

चाहा सुबेलि का मोहक
मधुहास बना मँड़राऊँ
चाहा कपोल-पाली का
कूजत् कपोत बन जाऊँ

सूची सी एक किरण ले
जर्जर जीवन-पट सी लूँ
चाहा सौ बार मरण ले
उनकी छाया में जी लूँ

चाहा था उनमे अपना
सूना संसार सजा लूँ
पलभर ही और नहीं तो
जीवन की वीन बजा लूँ

मैं चूम चमकती किरणें
चाहा सरोज सा फूलूँ
किरणों की डोर सहारे
मुसुकान-मंजु मुख छू लूँ

भर दे आँगन सौरभ से
ऐसी वह कौन लता है?
छू जाय शिला जो मेरी
किस छवि में कोमलता है?

जिसके न साथ हो शोक
है कौन शर्वरी ऐसी ?
लू नहीं जहाँ ज्योत्स्ना की
होगी विभावरी वैसी ?

कुंचित अलकों-सा ही क्या
है हृदय तुम्हारा बाँका ?
अन्तः सम्पूर्ण अभा सा
बहिरंग समूचा राका ?

यदि सीधी हो सरि बहती
संसार सिन्धु पा जाता
संवत-जाल में फँस के
जग यहीं न भँवरें खाता

नारी ! तुम निशासुगन्धा
हो रूपचन्द्रिकावाली
संध्या की दीपशिखा हो
हाँ, वही पतंगोंवाली

सौ बार हमी थे जाते
उस अचला के आँगन में
सोचा पिघली आएगी
यह घटा कभी सावन में

सौगन्ध तुम्हें, जीवन की
मत धूलि उड़ावो वैसी
दे छींटे तुच्छ घटाएँ
जलते निदाघ की जैसी

केवल अपेय काया ही
देखी न मेध्यता मन की
कंकाल माल मधुपी ने
कोमलता नहीं सुमन की

उस दिन मेरे जीवन की
कितनी अनमोल घड़ी थी
जिस दिन महर्घ माणिक की
प्रत्यञ्च अबोल लड़ी थी

सोचा था वीर्ता जी की
कह एक-एक डालेंगे
इस बार कहीं पथ में भी
जो उन्हें कहीं पा लेंगे

सम्मुख उनकी छवि ने ही
मेरी रसना ले ली थी
थीं इन्द्रजाल की माया
या मादन मधु-बेली थी

कंकालमात्र मत तरु को
दे केवल तपन जलाओ
है शपथ तुम्हें घनमाले!
एक ही बार आ जाओ

माना कि मान मंडन है
अभिमान वहीं हो जाता
अतिसीम सुधा-रस भी तो
जीवन्त गरल बन जाता

अन्तःसलिला को आ कर
कल्पना-धार दे देती
केवल करुणा की तरि ही
रस-सिन्धु पार कर लेती

नारी की ममता सोती
चुपचाप मृदुल आंचल में
करुणा भीगी पलकों में
सुस्नेह हृदय-शतदल में

उमड़ी कलियों की करुणा
वृन्तों का छोड़ सहारा
हिम-विन्दु-तुल्य चू पड़ती
पलकों का लोध किनारा

चू चुका न शेष रहा जब
मधु विन्दु एक भी बाकी
क्या बुझा शिशिर सकेगा
मधु-तृषा मिलिन्द-प्रिया की ?

जो होते हैं निधिशाली
मिलती विभूति कन-कन से
होती हीरक मिक्ता भी
मिल के शशि-भंजु वदन से

इसलिए रंक से होता
उनका मुँह मोड़ जाना
है पड़ा अमल अंचल में
उनके छवि-मेरु सुहाना

वेदना विचेत पड़ी थी
थी विफल संपदा रोती
सुन्दर सरोज-सौंचों से
ढलते जाते थे मोती

थी कलातीत विस्मृति की—
छवि उभय दीन दोनों से
पी-पी पीयूष उमलती
किम्बा सरोज-कोनों से

साधना सजग सोती थी
कोमल पलङ्ग पर मन के
मानो दृग् मींचे नलिनी
थी मृदुल अंक यौवन के

क्या वे निसर्ग-सुकुमारी
परिमल - पराग की भूखी
कंकालशेष किंशुक की
छू देगी काया रूखी ?

घूँघट मुख पर मानस के
कब तक सह स्वयं सकोगी ?
बज गई कहीं बंशी तो
मृग-सा मन रोक रखोगी ?

इस रेत-पुंज के तल में
मधु स्रोत अनन्त पड़े हैं
रसवन्ति ! प्रवाहित इनको
कर दोगी ? जो कि गड़े हैं

है हृदय विहीन दृगों से
कब हृदय पा सकी आँखें
फिर क्यों न काट ली जाएँ
जीवन-पतङ्ग की पाँखें

उस उदासीन के घट में
भर गई अमेय छटा क्यों ?
चंपक-प्रदेश में इतनी
घिर गई मरन्द-घटा क्यों ?

धारा विलोम होकर जो
होती उदार मतिवाली
घनश्याम घटाएँ घिरतीं
जी जाता जीवन-शाली

अब नाम विलोम तुम्हारा
बस कठहार है मेरा
आँखों में सावन, मन में
दुदम निदाघ का डेरा

माना कि सुमुख ने सुख के
बहुसंख्य सुमन तोड़े हैं
पद-तल में छिद्र हमारे—
जितने वे क्या थोड़े हैं?

मेरी दयनीय दशाएँ
जो स्वयं देखने आती
बिन माँगे उनकी आँखें
दो रक्त-बिन्दु दे जाती

जो मेरी विकल कहानी
सुन कहीं किसी से पाती
उनकी टेढ़ी भी भौंहें
तत्काल सरल हो जाती

ऐसा भी कोई होगा
जो सदय दशा दिखला दे?
किम्वा छाया हो उनकी
बस खींच कथञ्चन ला दे!

यदि दे न सका तो छल से
कुछ छीन नहीं लेता था
सुकुमारि ! शूल क्या मग के
मैं बीन नहीं लेता था ?

उचटी - उचटी सी रहतीं
इस लिए कि रूपवती हैं
चट से चढ़ जाती आँखें
इस लिए कि सोमवती हैं

निर्मथित प्रेम की मदिरा
वेदना-मूर्ति बन बैठी
करुणा वियोग-शंकर की
विष-पान किए सी ऐंठी

था समय सुभग भी आया
पल भर ही कोयल कूकी
अब रटन एक रसना पर
जम बैठ गई पी - पी की

जब विषम विश्व के दोनों
उज्ज्वल प्रतीक थे ऐसे
फिर तुङ्गभद्रु-हीरक का
संदर्भ सुकर हो कैसे

उनको गुमान-गौरव था
अपनी अनम्भ आँखों का
अभिमान अटूट हमें था
इन राशि-राशि राखों का

वह सरल चीण छवि-रेखा
गिरि-गौरव जाँच रही थी
हाँ, एक बूँद सागर की
सचराई भाँप रही थी

है प्रचुर संपदा जिनको
उनकी ही कपट-कहानी
देखी अधर्ण कुटियों में
दीपक की बुझी निशानी

जो जीवन-गोधूली में
पतझड़ था सुत अभागा
जब निकल गई मधु-शोभा
संपदा समेटे, जागा

जिनका वियोग दुःसह हो
वे अनाहूत आते क्यों?
सर्वस्व-हारि होकर भी
फिर याद दिये जाते क्यो?

वैभव जिस विधि ने इतना
बाँधा उनके अंशुक में
रे ! सुरभि उदार उसी ने
दी क्यों न कुसुम किंशुक में ?

उनको होता दुख मेरा
मधु पत्र वेलि से झरते
मेरा सुख उनका होता
संदेश-सुमन च पड़ते

संध्या ने जिसे सजाया
थी दीप-मालिका ऐसी
कुञ्जों ने जिसे पुकारा
थी कुञ्ज-पालिका वैसी

शैशिर शिरीष की डाली
कंकालशेष थी नंगी
सोई समेट अंगों में
मधुमास-संपदा चंगी

धूमिल गोधूली-तम में
ऐन्दवी निशा हो जैसी
शोभन शरीर की शोभा
थी विरह-दशा में वैसी

पी गई किसी शशि की है
कोमल किरणों को भोरी
इस लिए गरल का विष से
करती उपचार चकोरी

हँसती ही दीप-दशा पर
मिटते पतङ्ग मतवाले
जितने हैं आग लगाकर
घर स्वयं देखनेवाले

संसृति का स्वर्ग वहीं है
सौन्दर्य जहाँ लहराता
है मुक्ति बँधे जीवन की
जीवन जिसमें सुख पाता

दिनमणि अनुराग-भरा ही
नलिनी से गया बिसारा
शशि था निशि की छाया में
निशि ने ही कसा किनारा

नभ तो तरु-भुजा पसारे
विधुरायमान क्यों अवनी ?
जब सदा सन्निहित वासर
क्यों पीत हो रही रजनी ?

जब चला वसन्त विहग सा
पल्लव-सुपंख फैला के
पतझड मेरे जीवन का
तब जगा रंक अकुला के

जग के मानव-कानन में
जगती न कहीं केसरिमी
मधु नींद लिए आँखों में
तो आती ही सुख-रजनी

लालसा—मयूरी मेरी
बे-वश बे-होश अलस थी
उत्पंख भोग के मेरे
पद में गति-तान सरस थी

प्रत्यक्ष सरूप छटा थी
भ्रम से भूपर उतरी थी
थे नयन-चकोर हमारे
पीते किरणें निखरी थी

मन के कर में अंचल था
ढकने लगी थीं आँखें
वह अबुध हृदय तो जैसे
तोड़ने लगा था आँखें

ये लोम-पुंज पुलकित हो
थे जिसे चूमने धाए
वे हुई तिरोहित पल में
हो भी न सजग थे पाए

पल में साकार हुए थे
आमूल मनोरथ मन के
आकर्ण पलाश-दृगों में
मधु बिन्दु भरा था उनके

दैव-कानन में मेरे
नीहार-पात इतना क्यों!
उत्सव श्यामी आँखों का
हो रहा अरे! सपना क्यों!

क्यों मेरा ही तिलभर भी
सुख शूल हुआ था उनको
कब तापस ने ललकारा
उनके आमोद - सुमन को

बरसाता विरह - दिवाकर
संतप्त लौह की तीरें
तनु-लता झुलसती जाती
मुरझातीं वे-सुध पीरें

यह उषा नहीं, ज्वालाएँ
जलते मेरे जीवन की
जल रही मेघ सी काया
मेरे ही नव यौवन की

विश्रान्त त्रिपथगा सोती
घन पलकों के आंचल में
है उलझ गयी सुख-रजनी
किसके कुंचित कुंतल में ?

मानस में जिनका मेरे
बारीश विरह का उमड़ा
है उलझ गया उनकी ही
अलकों में विधु-सा मुखड़ा

रह-रह हिल-हिल यों जाती
क्यों स्नेह-दीप की बाती ?
कल-धौत-बेलि की हिलती
वातेरित जैसे पाती

मेरी करुणा से गीली
कृपा की कुंचित पलकें
अरमानों में रजनी की
अवतंसित कान्ती अलकें

जीवन में जलन तभी तो
आँखें भर आया करतीं
नदियों में व्यथा तभी तो
अंबुधि भर जाया करतीं

संतप्त हृदय की आहें
नभ में मँड़रायेंगी ही
तेरे मरु-से मानस में
रस-धार बहाएँगी ही

जीवन में जितने शोले
उतने तारे क्या नभ में ?
मुझमें जितने कोलाहल
उतने क्या उमड़े नद में

मेरे जीवन का दिनकर
जलता ही उदित हुआ था
उमड़ी यौवन-संध्या में
भी उल्कापात हुआ था

कर अग्नि-काण्ड जीवन की
प्राची में ऊषा जाती
अनुदिन जलते अंगारे
लेकर ही संध्या आती

कोलाहल-संकुल बिन में
जिस छवि को ढूँढ़ न पाता
निशि की संवृत पलकों में
वह बिंब उतर ही आता

वासर व्यतीत हो जाता
जीवन के व्यापारों में
भर रात ढूँढ़ता फिरता
नभ के असंख्य तारों में

दिन तो ज्यों-त्यों कट जाता
जब रात अकेली आती
कंपित कर याद किसी की
क्यों जीवन-बेली जाती ?

तारक-मंडित नभ देता
कह दिवस विरह के बाकी
नीहार-हार प्रातः भी
दूरी संयोग-दिशा की

छिल गए चरण बेचारे
तेरे पथरीले पथ पर
क्या व्यथा व्यथित की जाने
जो बैठा सुख के रथ पर?

उर-वीणा-तार चुप सोए
बंदी संगीत सिसकता
छू जिसे छेड़ देने को
मन बढ़ के रहा हिचकता

जब विरह-तपन से मेरे
होगी दरार मानस में
पंकज क्या तभी तुम्हारा
होगा उदार मधुरस में?

जब पवन-दूत पहुँचेगा
ले हृदय-विभूति हमारी
क्या तभी विमंडित होगी?
घन कुंतल-राशि तुम्हारी

मधु-सुरभित साँझ सारी
जीवन की टूट गई है
लालसा — लोल — लतिकाएँ
पी विष के घूँट रही हैं

तुम थी, शीतल मिलता था
हिम-सीकर-सिक्त उजाला
मानस की सूखी कलिका
अब पी-पी जलती ज्वाला

इस व्यथित विश्व-कानन में
ऐसा भी कोई होगा ?
दे उष्ण वारि वेला में
देखे निशीथ की शोभा

शीतल संसार तुम्हारा
आनन्द-वीचि पर सोवे
जलते मेरे जीवन की
चुप-चाप वेदना रोवे

सुख के समुच्च शैलों पर
आनन्द-वृष्टि हो तेरे
दुख-विध्य भले रह जाए
जलता जीवन का मेरे

झुकते महघ मणियों से
सुकुमार अंग हो तेरे
हँसते अभाव के अहि ले
दुख-शंभु सदा हो मेरे

वह कौन विरह में तेरे
गिनता होगा नभ-तारे ?
पट गीला करते होंगे
किस के लोचन रतनारे ?

लहरों सा सिकुड़न होगी
पड़ती पलङ्ग पर किस के
आता मलयानिल होगा
छन के झरनों से विष के

है मलय-गन्धवह आता
ज्वाला निदाघ की ले के
मेरे जीवन - कानन में
जाता दावानल दे के

तब लता-कुंज की छाया
शशि-भुजा-विमंडित सोती
मेरी संतप्त निशा की
तब काया कंपित होती

सुरभित उच्छ्वास मलय का
अहि-गरल साथ ले आता
आशा की हरित लता को
जिस से झुलसाए जाता

जलता उल्लास हृदय का
लालसा – लता सुकुमारी
अरमान-कुसुम की जलती
खिलने से पहले क्यारी

नभ में सुहास का किसके
वर्तुल संसार बसा है ?
किसके उदग्र यौवन का
सित पुंडरीक विकसा है ?

था कितना शान्त सरोवर
मेरे मानस का पहले
सुख का सरोज फूला था
मधुरस - पराग - सौरभ ले

फिर लगीं उतरने परियाँ
जग का सौन्दर्य समेटे
जीवन में आग लगा के
थीं जातीं शान्ति लपेटे

ले—ले सनाल कमलों का
मैं व्यजन झला करता था
भोला सा हृदय हमारा
हिम-तुल्य गला करता था

फिर भी उनमें कुछ ऐसा
संसार सजा था जिसको
केवल लूँ देख दृगों से
था पिए जा रहा विष को

कलियों की यही सफलता
कोमल वृन्तों पर फूलें
सुन्दर शृंगार सौरभ से
जग का कोमल मन छू लें

चिर लोभनीय कलियों का
यद्यपि ससीम जीवन है
फिर भी विडम्बना उनकी
करता निःसीम गगन है

दिन जितना भागा जाता
उतने समीप की रात
जितना निदाघ जल लेता
उतनी होती बरसात

उत्संग-नाल पर सुख के
फूले अरविन्द प्रणय के
श्रद्धा - मरन्द झरते हो
पाकर सुवारि परिणय के

जीवन अमोघ उनके हो
विश्वास-कुंज के नीचे
बहते हों स्रोत प्रणय के
जिनके दोनों दृग् मींचे

फूले हैं फूल प्रणय के
स्वच्छन्द कुञ्ज-कानन में
निर्बाध खिला करते हैं
तारों के फूल गगन में

मुसुकाती दीप - दशाएँ
संयत-सर्माग सदनों में
है प्रीति-मृगी भर पाती
निर्बन्ध कुलाँच वनों में

संयोग-विरह दोनों में
हम चक्रवाक सच्चे थे
शबरी शालनी आती
दिन फल लिए अच्छे थे

हम एक कूल पर होते
ऊषा की मधु लाली में
सम्पृक्त कुसुम खिल जाते
हम दोनों की डाली में

फिर डूब-डूब जाते थे
तम की तटनी काली में
विष-पर गिना करते थे
पीयूष - किरणमाली में

शोभा-सम्पन्न खड़ी थी
अनुराग माधुरी वैसी
घन-राशि अकृत पड़ी हो
फणधर-परिशीलित जैसी

बीती मेरे जीवन की
प्रत्यूष - कुसुम बोलेंगे
उच्छ्वास विकल छू मेरे
पल्लव-प्रवाल डोलेंगे

हैं हरे न ये पीले ही
कोरे रूखे-रूखे हैं
जो पत्र उड़े आते हैं
लगते सूखे-सूखे हैं

हैं सराबोर मधुरस में
मधु-मद-माती मालतियाँ
देतीं न पत्र पर मीठे
संदेश-कुसुम किन्नरियाँ

यदि हम भी कहीं किसी की
यौवन-स्मृति-तीर होते
तो टूट पड़े क्या नभ के
ग्रह-चन्द्र-सितारे होते ?

विश्रम्भ नहीं था उनको
मेरे विश्वास-सुमन पर
निष्फल प्रतीति थी उनकी
अपने ही बंचक मन पर

आनन्द-वारि ले बहती
हो यौवन-सरिता तेरी
उपकूल कंठ से केवल
छाया छू जावे मेरी

निःश्रेय-प्रेय दोनों ही
सरिता के सुन्दर तट हों
प्रच्छाय कूल पर जग के
जीवन का अक्षयवट हो

पल्लव-प्रसून ले हिलती
हो कल्पबेलि जीवन की
आनन्द-इन्दु ले फूली
हो डाल बाल-यौवन की

मधुरस में डूबी रेखा
पीले पुलिनों की हो
देती उदार सन्ध्याएँ
जोड़ी दो सुमनों की हों

इस जीवन की नस-नस में
बहता हो स्रोत प्रणय का
हो भरा अमल फूलों से
प्रक्षाल अम्लान हृदय का

हर आँगन के कोने में
हो एक सुगन्धा क्यारी
जिसको शोभित करती हो
रजनीगन्धा सी नारी

जीवन-कानन में वैसी
संचरणशील हो एणी
जिसका संचार बना दे
जीवन को पुण्य त्रिवेणी

प्रत्येक "निम्नगा" का हो
सौभाग्य "मन्दाकिनी" होना
प्रत्येक शैलजा का हो
शिवगा, शम्भुगा होना

अच्छोद - बिन्दुवों वाला
प्रत्येक घटा का घन हो
प्रत्येक बेल-बल्ली को
राधा का मिला सुमन हो

जिसको न दन्त विष के हों
हो वही सुभद्रा श्रेणी
जिसको न राव रिस के हों
हो वही सुभृगा श्रेणी

हर जीवन के आँगन में
हो छोटी सी फुलवारी
जिसको पुनीत करती हो
कोई · · वृन्दा सी नारी

जीवन की श्याम शिलाएँ
निष्कीट – किट्ट उज्ज्वल हों
जिनके ललाट पर बैठा
नारी का तुलसी.- दल हो

प्रत्येक पुरुष पृथ्वी का
पीता सम्पूर्ण गरल हो
उस शम्भु-शीश पर ढरता
नारी · का गंगाजल हो

बालेन्दु-भाल सा नर का
जीवन निःशेष भला हो
जिसके ललाट पर फूली
नारी की चन्द्र - कला हो

जग के सजीव जीवन की
आराध्य इन्दिरा नारी
सुख से सरोज पर सोवे
मानस – सर के सुकुमारी

पुष्कर - पुष्कर के उर में
दो रक्त कमल फूले हों
दोनों हो विलग भले ही
अन्तर से गले मिले हों

विश्राम-हीन जीवन में
विश्रान्ति — वल्लरी नारी
संतोष — सुधा — संप्लावित
पावन प्रसून की क्यारी

अंबुधि की कढ़ती आहें
जो कहीं न नभ छा पातीं
तो क्या सुतप्त वसुधा की
छाती शीतल हो पाती ?

होता न योग जीवन का
अंबुद - तरलायित - द्युति सा
सम्पूर्ण जगत पाता हो
संयोग होम - आहुति सा

जीर्ण मलिन परिधान फेंक
तब निशा उषा हो जाती है
जब किसी अरुण से आलोकित
संसार सुनहला पाती है

*

पी लोगी अपनी स्वयं विभा ?
घन-पट में समा सकोगी क्या ?
अरी ! दमकती दीप - शिखा
अंचल मे छुपा सकोगी क्या ?

तुम विन्ध्य-अंक में शोण-धार
अंजन मे कनक-शलाका सी
वारिद-मंडल में बिजली सी
नभ-तल में स्वर्ण-बलाका सी

अब तो लो उषा-कपोलों की
कुछ और बढ़ गयी अरुणाई
उड़ जाने को जो उद्यत थी
वह पंख पा गई तरुणाई

सौवर्ण सिन्धुगा ज्यों बहती
दुलमुल नीलम की घाटी में
कमनीय उषा की कान्ति ढली
वैसी ही घन-परिपाटी में

लावण्य-सिन्धु की वेला थी
प्रतिमा अबोल सुन्दरता की
नीलम-लतिका की हेमकली
सीमा असीम मंजुलता की

सुन्दरता और सुघरता की
वह दमक रही दामिनि सी थी
सुघर सुडौल एक घन-लेखा
लिपट रही नागिनि सी थी

अलि-कुल सी काली अलकों को
केसर-कर से सुलझाती थी
उस शोभा पर कवि की आँखें
न्योछावर हो—हो जाती थीं

दो कलित कमल पंखुड़ियों से
अलि-अलकों को सहलाते थे
किन्वा सौवर्ण शिलीमुख दो
रजनी का मन बहलाते थे

उर्वशी उषा कोमल कर से
घन-अलकों को सुलझाती थी
हाँ, उलझन मेरे जीवन की
बे-छोर बढ़ी ही जाती थी

संगम शैशव का यौवन से
संयोग शिशिर - कुसुमाकर का
खिलता अनमोल प्रसून यही
दिनमणि का और सुधाकर का

जीवन मे यौवन इसी लिए
जीवन का मोह सलोना है
सर्वदा उषा की किरणों मे
मिलता यौवन का सोना है

जीर्ण मलिन परिधान फेंक
तब निशा उषा हो जाती है
जब किसी अरुण से आलोकित
संसार सुनहला पाती है

जब सुख के दिनकर का वैभव
वारुणी-पात्र में ढलता है
तब श्याम सरोज निशा का ले
उद्दाम मनोज मचलता है

है प्रेम लोक का नहीं, यहाँ
किसका प्रसून खिल पाता है ?
यह कंचन केवल जल-जल के
कुंदन अपूर्व हो जाता है

कोमल फूलों की सेज नहीं
दन्तुर शूलों की माला है
जिसमें जीवन की हवि होती
ऐसी अमृत मख-शाला है

लहरों को देती मृदु सिहरन
लतिकाओं को आलिंगन दे
दरभिन्न मुखों पर कलियों के
पिघले सोने के चुंबन दे

उच्छ्वास-सुरभि मलयानिल को
परभृत को मादक तानें दे
अलि-नूपुर दे पद्मिनियों को
कलियों को मृदु मुसुकानें दे

आवत-पात्र में लहरों के
मणिक की पिघली हाला दे
नन्ही सी दूब-दुलहियों को
विद्रुम की मोती-माला दे

पी कर घन तम का कालकूट
हँस हेम-सृष्टि कर देता है
लेकर वारिज-वन का विषाद
आनन्द-वृष्टि कर देता है

जब रजनी काले आंचल से
मेरा जीवन ढँक लेती है
करुणा-किरणों के हाथ बढ़ा
ऊषा उतार रख देता है

वह कौन कसकती पीर जिसे
चुप-चाप स्वयं पीती रहती?
लेकर किस दिवस सुनहले का
आशा-संबल जीती रहती?

रवि के सहस्र भुज-पाशों से
जो मुग्ध उषा थी भाग गई
सन्ध्या बन वही प्रतीची में
विभ्रम का उड़ा पराग रही

वह कौन सलोनी सन्ध्या का
कुंकुम - भूषित कर भाल रहा !
वह कौन सुभग वारिद-पट का
मेचक अवगुंठन डाल रहा !

यह सन्ध्या वही जिसे रवि ने
कंचन-कर से सहलाया था
देकर अमोल मणि-मुकुर, मुग्ध
कुंकुम सा मन बहलाया था

उन्निद्र कोकनद सन्ध्या का
जब शेष मरन्द लुटा जाता
तब हतभागा विभ्रान्त व्योम
फूटा विधु-पात्र लिए आता

सन्ध्या की बिखरी मणियों से
शृंगार निशा का होता है
ऊषा की झरती पलकों का
निर्झर प्रसून-मुख धोता है

सम्पन्न जगत कंकालों पर
निर्माण सौध का करता है
गहरे अभाव के गर्तों को
कंगालों से ही भरता है

रजनी की काली अलकों में
अविकल शशांक का डेरा था
हाँ, जहाँ सुहानी सन्ध्या औ
ऊषा का लगता फेरा था

शिशुता की निशा सरलता की
उज्वल मुसकान समेट चली
देने किशोरता को ऊषा
अधरों को लाली भेंट चली

उत्फुल्ल कंज का दोपहरी
पद-तल को देने राग चली
देने निसर्ग-सुन्दर सन्ध्या
भोले मन को अनुराग चली

उत्संग - सरोवर से उस के
उद्दाम - कंज दो कढ़ आए
दो पिशुन मीन भी सीपों तक
कुछ कह देने को बढ़ आए

शृंगार उमड़ आया सहसा
अभिनव वसन्त का कोष लिए
यौवन-हिमकर आया धीरे
हीरों से जटित प्रदोष लिए

आई मतवाली आँखों में
फूले इन्दीवर वृन्द किए
झीने अम्बर-पट से लिपटी
शरदागम-चन्द अमन्द लिए

जाने कितना उन्माद लिए
उल्लास - विलास - मधुरता ले
नन्ही मुग्धनुपी पाँखों में
सिमटी निःसीम सुघरता ले

नक्षत्र - मालिनी रजनी सी
फूले इन्दीवर वृन्द किए
श्यामल-सरोजनी सरसी सी
अलि-नूपुर-गुंजित छन्द लिए

कौतूहल-रस का मधुर नीर
उत्कण्ठा की आकुलता ले
पंकज-किसलय सी आँखों में
ऊर्मिल जल की चंचलता ले

उद्दीप्त शिखा सी अधरों में
दीपक की प्रणय-पिपासा ले
श्वासों में पीर प्रकट करती
अन्तःसलिला की भाषा ले

उन्निद्र तामरस सा आनन
आँखों में लगती व्रीड़ा ले
उठती-झुकती सी पलकों में
लज्जित प्राणों की पीड़ा ले

जाने क्या कितने विधुओं की
उस मुख में शोभा सिमटी थी
कितने हृदयों की ज्ञात नहीं
अधरों में लाली लिपटी थी

केशों में काली रजनी थी
मुख पर ऊषा मुसुकाती थी
सन्ध्या मृदन्त के अधरों पर
नक्षत्र-सहित झुक जाती थी

पल्लव - से अधर ललकते थे
पाटल - प्रसून - मकरन्द पिए
यौवन मद-मन्नत पलकों ने
चंचल मिलिन्द दो बन्द किए

कोमल कुरंग थे मचल रहे
छवि की बौरी अमराई में
डूबे थे मीन-किशोर कुशल
यौवन-नद की गहराई में

सम्पूर्ण सुधाकर से लिपटे
जो अहि पीते पीयूष रहे
वे ही मधु-वर्धित कमलों का
हैं लपक लालिमा चूस रहे

सुकुमार कपोलों पर ऊषा
कुंकुम बरसाया करती है
सन्ध्या सिरहाने बैठ केश
फूलों से गूँथा करती है

बन्धूक-राग ले दोपहरी
पद-तल रँग जाया करती है
पीयूष-पूर्ण ले इन्दु-कलश
रजनी नहलाया करती है

नूतन यौवन था अंचल में
उन्मुख साँसें लेता वैसा
कोमल प्रभात की छाया में
सद्यः प्रबुद्ध पंकज जैसा

तम से, सुधांशु की किरणों से,
दोनों से, छवि थी खेल रही
वह धूप-छाँह की माया थी
माया से करती मेल रही

अंजन-विहीन अंजित-से दृग
बिन रँगे रँगीले मधुर अधर
अनुराग झाँक जाता धीरे
कोमल कपोल के पार उतर

लज्जित अनमोल कपोलों की
अरुणाई ऊषा में झलकी
उन्माद-पूर्ण सुन्दरता की
लघु लाली ले सन्ध्या ललकी

उत्संग वयस्का तितली सी
आकर सिमटी सी चली गई
उच्छल मरन्द से अपने हीं
भीगी लिपटी सी कली गई

आई तो मधु बरसाने को
ले जीवन के मकरन्द गई
आई संगीत सुनाने को
गीतों के छीने छन्द गई

काले जलधर के परदे से
धोखे से चपला झाँक गई
चंचल फूलों की परवशता
पल में तितली थी भाँप गई

कलहंस-किशोरी सी आकर
मानस के मोती बीन गई
कैवर्त-कुमारी भी आकर
जीवन-नद के लें मीन गई

अधरों पर हास उतरते हों
रँगती कपोल मुसुकान न हो
जिसके मन्द-मंगल-घट में
चू पड़ा प्रणय अम्लान न हो

यदि सोम - सुधारस की व्यापी
कलि करती अलि-सम्मान न हो
सरि भी क्या ? सागर में जिसको
लय होने का अरमान न हो

अलि-नूपुर-अंचित चरणों में
यौवन का मधु संगीत लिए
आकर निर्बन्ध किशोरी ने
कोकिल के मुख संवीत किए

*

दक्षिण-समीर की लहरों पर
पड चुके मनोज हिंडोले थे
कुसुमाकर – चुंबित कलियों ने
मुसुका के घूँघट खोले थे

बावली बेलियाँ थीं, कर में
थे कुसुम - पात्र कादम्ब - भरे
ड़र्वा ग्मना थी मधुपों की
भृंगों के मधु गुंजत ठहरे

उत्कण्ठा - भरी सरसियों की
बोलने लगी किंकिणियाँ भी
चल पड़ी किशोरी क्या जाने
किस ओर हुलस हंसिनियों भी

उर मे भी शान्त सरोवर के
उत्पन्न हो गई हलचल सी
थी लगी लोटने पद्मिनियाँ
डोलने वीचियाँ चलदल सी

पल्लव – कमान पर चढ़ आई
मन्मथ मनोज की तीरें थीं
मुग्धा कलहंस—किशोरी भी
यौवन – मद – नद के तीरे थी

कोकिला – कंठ से फूट बहे
मधुरस में डूबी डाली थी
उन्मद बल्लरियों के घर में
उतरी शोभा मतवाली थी

कोरक – कोरों के पीडन में
थे आमंत्रण के मंत्र जड़े
उन्मीलन में कलिकाओं के
संकेत - भूमि के अंक भरे

कलरव था समद शकुन्तों का
सम्भृत कुञ्जों में बन्द हुआ
कोमल कुसुमों की तीरों से
व्याकुल था कहीं कुरंग हुआ

तरु – तरु की शीतल छाया में
यौवन क्रीड़ाएँ करता था
उन्मद मलयानिल सा कोई
कलियों की व्रीड़ा हरता था

डोले सुन पल्लव डालों के
अरमान – पपीहों की बोली
कमनीय कामना – कलियों को
घूँघटवाली दुनियाँ डोली

पड़ चुकी मृणाल – भुजाएँ थीं
तरुओं के गले लताओं की
लेकर चुंबन की प्यास पृथुल
लहरें दौड़ी सरिताओं की

तब तो विमुक्त निर्झरिणी थी
जब थी न कूल की छाया में
निर्मुक्त माधवी थी, तरु की
जब थी न मोहिनी माया में

मकरन्द - मेघ कुसुमाकर का
आना तो अब भी शेष रहा
उन्मद कलियों की शोभा पर
टूटा न मधुप का देश रहा

अब तक भी डालों के अधरों
फूटी न उषा की लाली थी
अब तक भी हुई न मदिरा पी
वारुणी दिशा मतवाली थी

कर-किसलय से कलि-हास छुपा
लतिका न विहँसने पाई थी
अब तक भी कोकिल-कंठ तोड़
काकली न बहने पाई थी

मालती-कुंज में बैठ अभी
कोई न विहंगम बोला था
मलयानिल-कंपित पल्लव सा
मन भी न किसी का डोला था

जीवन-सन्ध्या की मधु—प्याली
दाड़िमी मुख से भग न थी
डालों पर निशागन्धा के
उतरी शोभा की पर्त न थी

कलि-कंचुकियों की चटकन पर
संसार मधुप का हिला न था
उन्मद भृंगों के गुंजन से
जीवन विषाद का धुला न था

सुन्दरता का संसार सिमट
किसलय-अंचल में पला न था
पल्लव - सुपंख लतिकाओं का
यौवन-प्रसून उड़ चला न था

कमनीय काम-लतिकाओं के
सर्वस्व सुमन मे ढले न थे
भोली प्रसून - कलिकाओं को
छल-चंचलता भी छले न थे

हाँ, रूप-सीपियों में अब तक
यौवन-मुक्ताएँ ढली न थीं
सुकुमार वेलियों के उर मे
अंकुरित कामना-कली न थी

अरे ! शीत सरिताओं के भी
लगे कलेवर जलने क्यों ?
और लगे हिम किरणों से भी
हिमकर आग उगलने क्यों ?

अरे ! अकाल अभी सरसी के
पंकज कैसे दीन हुए ?
और अभी असमय मानस के
कैसे मीन मलीन हुए ?

एक-एक भी कण पाने को
महासिन्धु हैं तुले हुए
और अगाध तड़ागों के भी
क्यों दरार – मुँह खुले हुए ?

जाने क्या कितना जादू था
कोमल कजरारी आँखों में
पग तोड़ बसा आकर्षण था
चंचल तितली की पाँखों में

पीयूष - सहोदर सुमन - हास
चूता उस सोमलता से था
मानो मनोज क्रीड़ा करता
उस छवि की कोमलता से था

अलि कुल-वंचित मकरन्द-लता
फूली चंपक की डाली थी
यौवन – कुसुमासव – पान किए
मुग्धा मधुपी मतवाली थी

आनन-अम्बुज से फूट रही
उसके मधु धार विकासमयी
लज्जित थी सन्ध्या अधर देख
ऊषा भी छोड सुहास गयी

अभिनव वसन्त का वैभव था
खिलती चम्पक की डाली में
किंशुक-वन का मधु राग भाग
गीले अधरों की लाली में

श्रीमत्कुसुमों की शोभा से
मोहनी मूर्ति थी गढ़ी गई
रवि-चन्द्र-गन्धवह के पथ की
वह ध्रुव थी बाधा खड़ी नई

उत्पल-पलाश सी आँखें थी
संगीत सुरा से भरी हुई
सम्पूर्ण तमिस्रा सी अलकें
सन्ध्या-जलधर से घिरी हुई

वह इन्दुकला माना कृश थी
कृशता थी, किन्तु कलंक नहीं
प्रसमान-विहंग उमड़ते थे
पर फूटे पर पंख नहीं

मैं जान सका केवल इतना
पुरुहूत-पुरी की परी न थी
कंचन-आशा-पतवार लिए
जीवन-जलनिधि की तरी न थी

व्यवहित प्रदीप के कज्ज सदृश
उस कोमल छवि की छाया थी
जैसे निशीथ में जाग रही
कोई किरणों की माया थी

अन्तिम निदाघ की दूब लिए
तनिमा साकार खड़ी सी थी
जिस पर घनश्याम घटाओं की
आ घिरी अदूर घड़ी सी थी

फूले वसन्त की छाया में
केवल फूलों की क्यारी थी
सुरभित भावों के हार लिए
आमूल फुल्ल फुलवारी थी

यह तन्तुनाभ की माया सा
है माया-जाल बिछा किस का ?
पीयूष-वेलि की छाया में
बो बीज कौन जाता विष का ?

*

निर्झर के झरते बिन्दु विकल
झाँगियों की हलचल होते हैं
जलते अंबुधि के धूम विपुल
शैलों में मिलते-गेते हैं

चिर बन्धु-वियोग-व्यथाओं की
संचित मालाएँ ले-लेकर
सतप्त शैल के गले लिपट
जाते दो बूंदें दे जलधर

सश्रान्त शिलोच्चय में सरि जो
अपनी नीची ले राह चुकी
शतशः पद लिपट शिलाओं के
रो के भी रोके कहाँ रुकी ?

कासार—वापिका—सरसी सी
जो गिरि का मान बँचा लेतीं
वे भी तो कुल-वैभव से ही
घनश्याम-अम्बुनिधि पा लेतीं

गिरि की चुपके चंचल सरिता
दे गलबाहीं जो भाग चली
लेकर उन्नत विधु का प्रदीप
नग बोल उठा "निम्नगा" चली

इच्छाएँ तरल अभावों की,
जिनमें माधुर्य छलकता है
आशाएँ सुरभित सपनों की;
जिनमें सौन्दर्य झलकता है

सोता है स्वर्ग अभावों में
सौहित्य जिसे खो देता है
शूलों से खेला करता जो
फूलों का भी सुख लेता है

उल्का-मुख असुर अभावों के
जीवन-निशीथ को घेर रहे
दल और अतृप्त पिशाचों के
हैं तिल मानव के पेर रहे

मंगल समष्टि को ये तुन्दिल
मुट्ठी भर दानव घेरे हैं
संपाति दृष्टि इनकी पड़ती
देवों के जहाँ बसेरे हैं

है इन डालों में और कहीं
क्या जीवन का रस शेष रहा ?
है इन फूलों में और कहीं
क्या माधव का मधु-लेश रहा ?

आँखों की सुन्दर सीपों में
सपनों के मोती ढलते हैं
रंगीन सुपंख तितलियों के
भोले कुसुमों को छलते हैं

दुख-मूल सुखों को छूने का
ए आतुर ! भूल न साहस कर
इन कोमल कोमल फूलों की
माया में पलते शूल प्रखर

यदि हैं आँखें तो अरे ! सँभल
ऐंठी पाटल की देख डाल
इन भोले-भाले अलियों के
लोहित से जिसके अधर लाल

जो फूल-सदृश हों आँखों को
प्राणों में चुभ-चुभ जाते क्यों ?
निर्मोह सताने वाले ही
प्राणों को अधिक सुहाते क्यों ?

फूले वसन्त की शोभा क्या !
यदि जीवन में पतझार न हो
मधुता कमलाकर की भी क्या !
जिसने देखा नीहार न हो !

शशि-कला वही श्रद्धा-भर से
नत शीश जगत का पाती है
जो पूर्ण तमिस्रा के पीछे
दुबली-पतली सी आती है

कोमल कमलों की कारा में
निश्चित कोई आकर्षण है
जलती निदाघ की किरणों में
अन्तर्निगूढ़ मधु-वर्षण है

जीवन अभिलाष-तरंगों से
नक्षत्र-निलय सा संकुल है
वर्जित अरमानों के जल से
काया-कलशी भी पंकिल है

संतप्त कशाओं की वर्षा
चपलाएँ कर ही जाती हैं
घनश्याम घटाएँ भी आकर
कुछ नमक छिड़क ही जाती हैं

*

जिसकी असीम सुन्दरता की
जग में चर्चा दिन-रात चले
कोमल किरणों की छाया में
हिम-शैल-खण्ड पाषाण गले

कर दी आँखें अंजित जिसने
किरणों की कनक-शलाका से
जीवन-जलनिधि की भेंट हुई
हिमकर-परिशीलित राका से

शशि को पीयूष दिए जिसने
कुसुमों को गन्ध-मरन्द दिए
जीवन-जगती के दुर्निवार
जिसने विषाद सानन्द पिए

मानस-पट पर जो निखर उठे
वैसी उन्मद सुघराई में
जिसने वसन्त को ललकारा
यौवन-वन की अमराई में

जिसके हों सरस किनोर औ
जिसके दोनों कुल-कूल हरे
जिसकी कि सुमन से मिलने को
सुकुमार वीचियाँ भी ठहरें

उसको ही सुमन चढ़ाऊँगा
जिसने आनन्द अमन्द दिए
मैं गीत उसी के गाऊँगा
जिसने गीतों को छन्द दिए

परिचय न निम्ब-रस से जिसका
मधु की मिठास वह क्या जाने ?
जिसको कि घृणा हो शूलों से
फूलों का सुख कैसे जाने ?

सम्पत्ति-सलिल-सिञ्चित छवियाँ
ढँकती कुरूपता कंचन से
दुर्ललित लालसा के विष को
व्याकुल भुजंगियाँ चन्दन से

उसमें अपार सुन्दरता के—
अनुरूप रूप राका का था
कह दें, चूड़ान्त निदर्शन सा
विधि की निर्माण-कला का था

उस कोमलता की काई पर
अम्बर सा ही आवरण रहा
वह वीचिमान मंगल वपु था
जिसके अन्दर से झाँक रहा

वह रूप अतीव प्रगल्भ रहा
इसलिए हृदय पर हावी है
मानस पर छाई, गई घटा;
अब भी उत्पल कलापी है

वह भाव अयाचित आता क्यों
जो केवल बाल का भूखा है
उतना ही स्नेह जला जाता
जितना सम्भवतः रूखा है

कानन में मेचक मेघों के
सुरधनु-से फूल दिए किसने?
कलहंस-चकोरों को मोती
पावक निर्धूम दिए किसने?

कुमुमों की मंजुल मणियों से
भर डालीं अंजलियाँ किसने ?
संध्या-ऊषा को अंबुदमय
दे डालीं कंचुकियाँ किसने ?

अम्बुधि के शीतल मानस में
धधका दी रे ! ज्वाला किसने ?
दी फूँक सहज ही सन्ध्या की
नीली नीरद-माला किसने ?

विच्छिन्न विरह के जीवन में
झंझा-तूफान भरा किसने ?
लतिका के किसलय-अधरों पर
कलि का हिम-हास धरा किसने ?

चञ्चल विजली की बाहों से
घन-कंठ सनाथ किया किसने ?
जल-विन्दु-मरन्दी मेघों का
झकझोर अरण्य दिया किसने ?

नदियों की उमड़ी धाराएँ
दीं घेर किनारों से किसने ?
भर दी सङ्गीत-लहरियों से
वन-बीणु वेणुओं की किसने ?

घनश्याम-खण्ड सी आँखों में
चञ्चला-विलास भरा किसने ?
कोमल मृणाल सी बाहों में
अरमान-उफान भरा किसने ?

पूर्णिमा सुन्दरी के दोनों
अनमोल कपोलों पर चिकने
साकार चन्द्र-रवि के पाटल
चुम्बन धर दिए सुघर किसने ?

रवि-कर-संतापित वसुधा को
चन्द्रिका-प्रपात दिया किसने ?
शत्रैरी-निर्पाड़ित विहगों को
ला सुभग प्रभात दिया किसने ?

उन्नत-गिरि-गोद-पली सरि को
सागर की ओर किया किसने ?
उद्वेल सिन्धु की लहरों को
शशि-चुम्बन-लोल किया किसने ?

रे ! स्वाति-विन्दु की प्रबल गया
चातक-प्राणों में प्यास कौन ?
दे गया केकियों के कोमल
कण्ठों में अहि विष-वास कौन ?

घन-पट मे विधु-मुख रजनी का
चुपके से देता खोल कौन ?
हौं, सहज सलोनी सन्ध्या का
छू देता गोल कपोल कौन ?

मुद्रित कलियों की आंखों को
दे चुटकी देता खोल कौन ?
चिर मौन मुखों में मधुपों के
भर देता मधुमय बोल कौन ?

देता दिपती वारिद - पट मे
बिजली की बाहें खोल कौन ?
दे देता उभय कपोलों को
सन्ध्या के कुंडल लोल कौन ?

रजनी गनी का विमल हास
घर - घर देता कर गोल कौन ?
रवि - शशि - कौंटों मे सन्ध्या की
सुन्दरता देता तोल कौन ?

नभ के छिद्रों से लुक-छुप कर
सुन्दरता हँस जाती किस की ?
अवलोक व्याल - से मेघों को
कोमलता काँप जाती किस की ?

*

था वारि-कुण्ड वश में जिसके
उसके संगीत क्यों मूक थे ?
पीयूष - रश्मि - शशिवाले के
लोचन - चकोर क्यों भूखे थे ?

मल्हार - मेघ की वर्षा में
क्यों मन का दीपक जलता था ?
क्यों थिर-प्रवाह लय के तल में
द्रुत और विलम्बित पलता था ?

थे वारि-हीन लोचन उनके
जो अश्रु-कुण्ड की गनी थी
मधु-सिंचित रसना से चूती
तिक्ता-निषिक्त क्यों वाणी थी ?

प्रत्यावर्तनके चित्र मिटा
नूतन परदेसी गया कौन ?
इस काल-चक्र के फेरे में
हैं सभी पुराने, नया कौन ?

वर्तिका दीप दोनों हैं
पर स्नेह कहाँ से लाऊँ?
इस स्नेह-विहीन दिए को
कह दो किस भाँति जलाऊँ?

पल्लव में फूटी लाली
फूलों में राग अनूठा
हर लता-बेलि के उर में
मादन अंकुर था फूटा

कलियों ने ली अँगड़ाई
पल्लव के अंचल डोले
हर जीवन के यौवन में
मधु-कण थे मधु ने घोले

थी बढ़ी पोढ़ परभृतिका
चूसने सुरस पल्लव का
सब्रीड़ लोल कलियों को
चुंबन था मिला मधुप का

हर यौवन की सरसी में
थे उठे मन्द हलकोरे
उत्तान पात पुरइन के
थे छलके कंज - कटोरे

बातास खींच कलियों का
धीरे घूँघट - पट लेता
मादन प्रसुप्त यौवन का
मुँह चूम—चूम ढँक देता

सौरभ—विमुग्ध मधुकर ने
उत्सव आँखों का देखा
सो रही बाल पल्लव पर
यौवन - वसन्त की रेखा

थी अलक-राशि तारों से
मंडित श्यामा रजनी की
थी सजी सेज फूलों से
उस दिन अधीर अवनी की

चैतन्य—राशि बन आए
जो थे नन्हे-से मन में
मधुमास समर्थ बने थे
मेरे अबोध-से वन मे

देकर अकूल हरियाली
मन में उमड़े सावन की
सारी विभूति नन्ही—सी
क्यारी में नन्दन वन की

पल भर ही तो जीवन में
रस की बूँदें बरसा के
इन शफ़री सी आँखों को
क्यों छोड़ गए तरसा के ?

मकरन्द-विन्दु की वर्षा
जिसने की अकिंचनता पर
घनश्याम गये वे ही क्यों ?
छल में विश्वास बता कर

तट पर भी खड़े हुए थे
मेरी सूखी सरिता के
प्यासे को छोड़ गये क्यों ?
मरु-पथ को स्रोत बता के

नीहार – शीत कर से जो
थे परस गये तनु मेरा
उनकी ही सुधि-तीरों ने
जीवन-कुरंग को घेरा

उमड़ी रस-राशि दिखा के
चंचल घनश्याम-दृगों में
क्यों तृषा मृषा बन बैठे
दिन मध्य-निदाघ-मृगों में ?

शारद शशि-तारों ने भी
उनसे छाया ले ली थी
मुसुकान मधुर से जिनकी
मंडित यौवन—बेली थी

धूली सुकुमार चरण से
पाटल - प्रसून ने ली थी
कुछ तृषा चकोरों को भी
मेरे शशि ने दे दी थी

जिनकी कोमल किरणों से
कवि के संगीत फूले हैं
जिन पर सुभाव छन्दों के
डाले मिलिन्द झूले हैं

जिनकी किरणें कमलों का
संगठन तोड़ देती हैं
विदलित कुमुदों के दल की
शृंखला जोड़ देती हैं

लेकर संदेश उन्हीं के
अंबुद घिर-घिर आते क्या ?
मधुमास सुवर्ण दलों पर
लिख वर्ण-कुसुम जाते क्या ?

छाई सावन भादों पर
क्या उनकी ही हरियाली ?
गाती क्या गीत उन्हीं के
मादन कोयल मतवाली ?

उज्वल तीर उनके ही
क्या अश्रु विकीर्ण पड़े हैं ?
लेकर प्रकाश उनसे ही
क्या सोम-दिनेश बढ़े हैं ?

वर्षा कल्याण—जलद में
आनन्द - बिन्दु की होती
थे पले पलक - सीपों में
पल भर प्रमोद के मोती

दुनियां से आँख बँचाकर
मिलने निर्शीथ में आये
छुप गए पलक में जैसे
मेरे लोचन खुल पाये

आनन्द - पुञ्ज - से आकर
वे क्यों विषाद बन भागे ?
दुख ऐंठ उठा क्यों मेरा ?
सुख के शकुन्त जब जागे

निःसीम सिन्धु बन आये
जो थे नन्हे-से मन में
शशि शीत गये वे ही क्यों
अब आग लगा जीवन में ?

विश्वास हमें था उनका
उनको था अपने मन का
रे ! मुक्ति मधुर थी उनको
था हमें मोह बन्धन का

हम तो वे मोल बिके थे
था मोल भूलता उनको
वे-हाथ हृदय था मेरा
वे रोक रहे थे मन को

थे मन बहलाने आये
ले सुमन स्वप्न में भागे
लालसा—बेलि में मेरी
जब अंकुर उठे अभागे

आना तो जान सका था
हँसती पलकों में आये
थे बन्द कपाट दृगों के
फिर कैसे निकल पराये ?

वे थे उदार कुछ वैसे
कोरे कंजूस नहीं थे
तुम कौन ? कहाँ से आते ?
आगत से पूछ रहे थे

तर्जनी—नोक में मुख पर
लटकी लट मोड़ रहे थे
शैवल—सनाथ अंबुज में
या डंठल जोड़ रहे थे

शैशव—यौवन दोनों के
उस छवि में फूल खिले थे
जैसे अडोल सन्ध्या को
दो फूल अमोल मिले थे

शैशव—यौवन दोनों को
उस छवि में मोह घना था
सुकुमार शृंगार इसी से
चिर काल किशोर बना था

सयोग सुमन का होता
पल भर ही तो जीवन में
फिर शूल चिरायु बिताते
दिन वारि लिये लोचन में

प्रज्वलित उभय सन्ध्या के
पुट में निदाघ-दिन जैसा
संतप्त वियोग-अनल से
मेरा भी जीवन वैसा

अगणित निशीथ जागे हैं
आँखों की नींद भगा के
वासर असंख्य बीते हैं
जीवन में आग लगा के

पतझड़ के पीत दलों पर
संतप्त दिवस हैं काटे
हिम-बिन्दु और! शूलों में
मधु-बिन्दु-भरोंसे चाटे

वे आते भी इस पथ से
अँकोड़-ऐंठे आते हैं
फिर भी जाने क्यों मन में
बरबस पैठे जाते हैं?

आवें, जैसे भी आवें,
आकर भी भले न बोलें
पीयूष-पाणि जीवन में
विष-रस तो जावें घोले

उनका केवल कौतूहल
हलचल मेरे जीवन की
मुसुकान सरल भी; उलझन
बन गयी हमारे मन की

उस वल्गु हास में मैंने
मधुमास विमद था देखा
अंकित भ्रू-कुंचन में भी
विश्वास-पत्र की रेखा

था स्नेह असत्य जता कर
वंचक ने मन बहलाया
क्या सुमन समझ पायेगा
छल-चंचरीक की माया ?

अपनी सतेज आँखों का
जादू न ज्ञात था उनको
भोलेपन का अपने ही
मन के न बोध था मुझको

उठते असंख्य हलकोरे
यों भी असीम सागर में
सर्वेन्दु—निशा जैसे क्या
मिलते उल्लास लहर में ?

मैंने न कभी सोचा था
पल भर ही जीवन वैसा
उमड़ेगा, लहरायेगा,
उद्वेल वारिनिधि जैसा

कर वर्तमान कुछ ऐसी
जाता अतीत में दागे
जिनका भविष्य सुन्दर में
सुधि आवें मीठी आगे

आनन्द-मूर्ति का भ्रम था
वे स्वयं मृत पाड़ा थे
मेरे स्मृति शेष हृदय में
वे ही अशेष व्रीड़ा थे

अन्तर में आग लिये, था
हिम-खण्ड समझ अपनाया
जब झाग्खगड जीवन का
जल उठा, खुली तब माया

कुछ ही तो मीठी बूँदें
उस दिन दे प्रेम-सुधा की
कर गये अकिंचन पल में
बस रही सौंम ही बाकी

सोये अरमान बिचोर
जिनकी आशा ले मन में
वे हो तो आग विरह की
हैं छोड़ गये कानन मे

काँटों को गले लगाये
मेरे जीवन की कलिका
है पडी पीत पातो पर
विश्वास मृषा ले अलि का

मधुवन वसन्त का मेरा
पतझड़ अशंक ले सोता
कंकालशेष शूलों पर
जो देख उन्हे सुख होता

लेते जो देख हमारा
सुख शूल-सेज पर सोता
मृद से जैसे खिल जाते
उनको दूना सुख होता

मधुमास—शरीर हमारा
शूलों की सेज बिछाये
इस लिये पड़ा रहता है
पतझड़ को गले लगाये

निष्फल विवाद में क्या है
माना कि तुम्हीं सच्चे हो
लगते प्यासी आँखों को
तुम लोकोत्तर अच्छे हो

हलचल मेरी दुनियाँ की
क्या निष्ठुर! जान सकोगे?
यदि कहूँ "बड़े वैसे हो"
क्या निज को मान सकोगे?

सौरभ—प्रवाह फूलों का
सुन्दर! अबन्ध बहने दो
पल भर भी तो शूलों को
उस धारा में रहने दो

तुम भी तो कुसुम-सदृश ही
सुकुमार सहज हो भोले
कितना प्रशस्त जीवन हो
हो तुहिन-गेह में शोले

तुमको विभूति का बल है
सर्वस्व विभूति हमारी
रंगीन पराग तुम्हारा
उड़ती है धूलि हमारी

इस भस्म-पुंज के तल में
जीवन की ज्योति सँची है
निर्मम संवृत रहने दो
कुछ भूति पुनीत बँची है

भर लो न तरल तुम इतना
सुख का अन्तर मे अपने
रत्नाकर चपल! तुम्हारा
बस लगे तृषा से जलने

कल्याण नहीं बस केवल
आलोक लुटाने मे ही
आमोद कहाँ मिलता है
मधु—बिन्दु जुटाने मे ही

है अंशुमाल दिनकर के
अनुपद ही आती रजनी
पलती है! दीप—तले ही
संकीर्ण तामसी अवनी

तामसी कालिमा में ही
प्रत्यूष सृष्टि का पलता
तापसी शिलाओं का ही
सन्देह मोम सा गलता

उनका संकेत हमें था
"कुछ तो ऊँचे उठ आओ"
आग्रह विनीत था मेरा
"बंधन तो तोड़ जाओ"

उनमें प्रभुत्व था, मेरी
जंजीर काट सकते थे
उनमें सामर्थ्य घना था
गह बाँह खींच सकते थे

केवल उनसे याँचा था
दे विन्दु—विन्दु की माला
संपूर्ण शीत जीवन से
शशि देते जाओ ज्वाला

मुझको अदेय था ही क्या
जो स्वयं माँगने आते
वरुणी – वरुणा के जल में
पद तो उनके धुल जाते

सच है विरुद्ध भावों में
सूना संसार भग था
फिर भी मानस का मेरे
सहसा सन्यास हुआ था

तम-लीन निलय में मेरे
हो खड़े अलिन्द—सहारे
आते ही लौट गये थे
गृह हुआ पुनीत कहाँ रे!

वर्तिका दीप दोनों हैं
पर स्नेह कहाँ से लाऊँ?
इस स्नेह – विहीन दिये को
कह दो कस भाँति जलाऊँ?

दे जाय स्नेह तिल भर ही
तिल – मंडित शोभा तेरी
क्षति क्या हो? यदि मेरे भी
जीवन की मिटे अँधेरी

हैं बरस वारिधर जाते
वे ही जो नीरव घिरते
घन घोर गरजने वाले
कितने हैं वारि बरसते ?

निश्छद्म प्रणय का जिनके
उन्मग सजग हो मन में
निर्वाण मधुर जीवन का
है मिला उन्हें बन्धन में

सपनों में कौतूहल से
जो आते हैं छुप—छुप के
जब शेष निशा होती, वे
क्यों जाते चुपके-चुपके ?

कर वंचित जग की आँखें
तम – पट से लिपटे आते
मुख देख अरुण प्राची का
क्यों कांपते सिमट जाते ?

यदि कभी भूल से मेरा
वे पथ आलोकित कर दे
उनकी सुकुमार हथेली
मुक्ता – समूह से भर दे

यह मेघदूत जीवन का
इस बार सुना ही देंगे
कोमल कर से उनके ही
काले कड़वा ही लेंगे

जब हृदय दौड़ रुक जाता
जो कहता, बाती कह दे
पावक निर्धूम दिखा के
उनमें शीतलता भर दे

सम्मुख मन – मुकुर दिखा दे
वे बिंब देख ले अपने
कह दे कि सदय लौटा दें
वे नींद, सुहाने सपने

गिन लेंगे स्वयं समूचे
उर में जो शूल मिलेंगे
मधुवन मिट जाय हमारा
उनके तो फूल खिलेंगे

उनके मिलने से पहले
छाया भी रूठ चुकी थी
आशा—कदम्ब की प्यारी
क्यारी भी बीत चुकी थी

किसने सुख के दिवसों को
दे दी अक्षय चंचलता ?
किसने शिरीष – सुमनों में
भर दी अभंगु भंगुरता ?

निर्मल अवुधि के जल में
था कभी इन्दु भी आया
सागर कहता "मैं भी था
उद्वेल कभी लहराया"

यौवन में कोई कहता
"क्या देख रहा रे ! पगले
प्राणों के दीप जला के
फिर नींद जगा ले, जग ले"

वह पावन प्रेम टिका था
उनका संसार—सहारे
संसार विमुख था मेरा
थे बँधे सरोज हमारे

मार्ग दुनियों उनकी थी
वे थे दुनियों के स्वामी
मेरे ही हुये पगये
अज्ञेय अनिश्चित नामी

वेदना—भाल में बस के
सुख से जोड़े नाता है
दुर्भाव यहाँ जीवन का
बन्धन तोड़े जाता है

मैं सुनता क्यों उनकी ही
जो मेरे हित बहरे हैं ?
मैं बहुत दूर जीवन से
वे जहाँ वहीं ठहरे हैं

पथ वही हो गया मेरा
जिस में वे चले गये हैं
पूरी प्रतीति उन पर ही
जिन से हम छले गये हैं

सानन्द सभी पा लेता
वे जो कुछ भी कहते हैं
क्यों मेरी मर्म—कथायें
वे ही ऊँचे सुनते हैं ?

उनके आँगन में फूले
सुख—पुण्डरीक हैं जितने
मेरे जीवन—अंबर में
हो चुके रन्ध्र हैं उतने

मेरे उखड़े धागों से
तुम जीवन—पट बुनते हो ?
निःश्वास—वीणा से मेरी
मधु मरण—गीत सुनते हो ?

दिन—दिन सिकुड़ी सी जाती
मेरे जीवन की वापी
छूता संतप्त करों से
उद्दाम दिवाकर पापी

जीवन—समुद्र मथ डाला
इस विरह मन्दराचल ने
क्या लेगा सिन्धु कहा जो
हालाहल लगा उगलने ?

सूने कुटीर को घेरे
रहती निष्कम्प अँधेरी
मुँह बाये उल्का - मुखियाँ
दे जाया करतीं फेरी

यह मूक वेदना मेरी
कब तक गुम-सुम गायेगी ?
जीवन में ज्वाल युगों की
ले सागर सी सोयेगी ?

पावन गंगा करुणा की
उनकी पलकों में होती
धूमिल सी मेरी काया
सच, फूट दृगों से धोती

यदि अन्तरंग भी उनका
छवि सा विशाल हो पाता
तो क्या उनके जनपद में
असमय अकाल आ जाता ?

शोभन संसार जला था
थी शान्ति शेष कुछ मन में
बाकी विभूति करुणा की
थी भस्मीभूत सुमन में

उतरा न हार कुसुमों का
चढ़ उतरी रंक जवानी
वर्जित मल्हार किसी का
दीपक की करुण कहानी

होता प्रतिबोध उन्हें तो
निःसंशय दौड़ आते
मेरी वियोग—गंगा की
धारा तो मोड़ जाते

वे कौन ? हृदय में जिनके
ज्वाला न विरह की फूटी
किनके न अबोल दृगों की
कोमल मालायें टूटी

वे कौन ? निलय में जिनके
हो प्रणय—प्ररोह न फूटा
किसके न सुजात सुखों को
निर्मोही लोक ने लूटा ?

मधु-सिंचित बेलि प्रणय की
किसकी न कभी कुम्हलायी ?
किसकी न मेघ सी आँखें
बरसात व्योम में लायीं ?

यदि पावन प्रेम हमारा
मन उनका छू न सका था
तो क्यों आते इस पथ में
उनका श्राचरण रुका था ?

जीवन के समय सुनहले
जलते निदाघ में बीते
अब व्यर्थ घिरा करते हैं
घनश्याम गगन में रीते

चातक की अमिट तृषा ही
है स्वाति-बिन्दु की मधुता
यदि छोड़ चकोर अनल दे
फिर कहाँ टिकेगी विधुता ?

घर जो कर गये हृदय में
मन उन्हें ढूँढ़ता फिर क्यों ?
अन्तर में आग, दृगों में
सावन—घन आते घिर क्यों ?

घर उन्हें छुड़ा देने के
सब व्यर्थ प्रयत्न गये हैं
जितने वे हुये पुराने
उतने ही लगे नये हैं

रे ! उन्हें भूल जाने के
उपचार किये हैं जितने
सम्मोहन वेणु बजाते
वे निकट आ बसे उतने

यदि छोड़ हृदय की बातें
चलते संसार—सहारे
किसकी ऐसी माया थी
हम होते जिससे हारे ?

तिल-तिल स्नेह जलता है
इस देह-दीप के उर का
घनश्याम—घटायें भी तो
जातीं बरसाये करुका

फूलों को प्यार किया तो
परिणाम मिले कांटे हैं
जिसने चाहा सुख छीना
पर दुख किसने बांटे हैं ?

सुख में जितने अपने थे
दुख में होगये पराये
वे ही बैठे जाते हैं
जो अनाहूत थे आये

बिछुड़ों का यही सहारा
"संसार चक्र सा चलता"
प्रिय होती मौत नहीं तो
निःसंबल जीवन खलता

संयोग—सुमन की आशा
लेकर वियोग—पल रीते
आते न कहीं जीवन में
हतभागे कैसे जीते ?

अभिशाप सरलता जितनी
छलना वरदान यहाँ है
श्रद्धा—विहीन बेला में
खिलता विश्वास कहाँ है ?

थी अभिलाषा मिलने की
तब कौन निकट था मेरे ?
अब खींच उन्हें लायेगा
मेरा विराग ही नेरे

तुम जितनी दूर रहोगे
उतने समीप पा लूंगा
दिग्-भ्रान्त चले आये तो
मैं और कहीं जा लूँगा

जब शाम सबों की होती
होता प्रत्यूष हमारा
मुँह ढाँक निशीथ सघन से
सोता मध्याह्न बिचारा

जब दिन की दोपहरी में
मेरी निशीथिनी ढलती
सुखवालों की आँखों को
क्यों नींद हमारी खलती ?

उनसे विच्छेद हमारा
आनन्द—हेतु था जग का
क्यों फूल—समूह किसी का
हो शूल किसी के मग का

होता संसार हमारा
उनके न हुये होते तो
जग सुनता मेरी, धुन के
पक्के न हुये होते तो

नभ-तरु के शीश चढ़े जो
तारक—प्रसून मुसुकाते
लोहित प्रभात के कर से
निर्मोह मिटाये जाते

फिर भी मिलने की आशा
होती न कहीं जीवन में
जल जाते विधुर बिचारे
दुर्वार वियोग-तपन में

जब चूस वियोग तुम्हारा
लेगा मरन्द कन—कन से
आओगे प्यास बुझाने
मधुबिन्दु—विहीन सुमन से ?

है साहस ? क्या तुम मेरे
जीवन का विष पी लोगे ?
नीरस उदास आँखों में
किम्बा मधुरस घोलोगे ?

ब शीतल प्रणय तुम्हारा
ोड़ायें पी न सकेगा
व क्या न तोड़ पलकों का
ह लघुतम सेतु बंधेगा ?

श्वास—वारि से वंचित
मिल मानस हों जिनके
तोष—सुमन फूले क्या
ोवन—सुबेलि में उनके

ानन्द—निकेत तुम्हारा
या स्वयं शान्ति पायेगा ?
ह पर्ण—कुटीर हमारा
ब तक न देख जायेगा ?

श्रान्ति-धेनु कुटिया में
श्वास—वत्स ले सोती
वा—सुबेलि आगत का
ताप समूचा धोती

यों मेरे सुख की गाथा
सार लिये फिरता है ?
भ—से सूने आँगन में
यों करका—घन घिरता है ?

क्यों मन को पीड़ा होती ?
क्यों हृदय विलुंठित होता ?
जो प्रत्यवाय प्रिय पथ में
यह परुष विवेक न होता

वे होते मेरे, उनका
हो गया स्वयं जो होता
आनेवाला दुर्दिन ही
अवसर विवेक का खोता

होती दुरन्त क्यों रजनी ?
मधु-याम दिवस भी होता
नभ आ जाता चरणों में
जीवन न निरम्बर होता

होकर हम और किसी के
मधुमास कुंज में लाते
दो किन्ही अथक नयनों के
पथ से ही आते—जाते

मीठे उच्छ्वास विरह के
सुख के संगीत बनेंगे
तारों पर छेड़ कहानी
प्रेमातुर शीश धुनेंगे

सरि—सागर सूख गये क्या ?
जो उमड़ वारिधर तेरे
जल – बिन्दु याँचने आते
सूखे लोचन से मेरे

ये अटल रहें दुख मेरे
जलती निदाघ की लू ले
उनकी मोहन बेला में
आनन्द—सुधाकर फूलें

मधुमय जीवन उनका हो
मत जीवन में बिष घोलें
उनका हो भला न आयें
यदि बोल विरह के बोलें

जितना कठोर कोमल था
उतनी पुनीत थीं घातें
जितना कि सत्य झूठा था
उतनी विनीत थीं बातें

उस मूर्तिमन्त यौवन का
दीप्यन्त देह था वैसा
सौवर्ण—वीचि वापी का
वारिज विनिद्र हो जैसा

*

संताप—दिवाकर से जो
थी दीन हो रही व्यापी
लो लगा थिरकने उसका
नव श्रवुद देख कलापी

जब जीवन—वेलि झुकेगी
सुख—सुमन—भार से दब के
होंगे लेने मधु आये
तब बने प्रियम्वाद कब के

मधुमास पुनः लौटेगा
यौवन जीवन पायेगा
चुँगने मानस के मोती
उनका मराल आयेगा

कल्पना—मधुर मधुराका
संसार बनेगी मेरा
फिर तमस्पुंज जीवन का
पायेगा कहाँ बसेरा !

उमड़ेगी फिर हरियाली
रस—भीना अंचल होगा
नाचेगी कल बल्लरियाँ
मुद होगा, मंगल होगा

विश्वास अटल है मेरा
वे मधुमाते आयेंगे
बोलेगी कोमल कलियाँ
हँसने प्रसून पायेंगे

उनके अनूप अम्बुज मे
जीवन—मरन्द पाऊँगा
हो, स्वाति—विन्दु मे उनके
मोती अमोल पाऊँगा

वरदान—तुल्य यौवन का
तू कर उपभोग घना ले
जो शक्ति अकूत मिली तो
सुन्दर ससार वना ले

आनन्द-मूल इस क्षण को
तप से अनुकूल बना ले
हो कर तू स्वयं किसी का
साकार बना सपना ले

यह, वह कल्याण-कुसुम है
जो स्नेह-वारि से खिलता
रे ! यहीं निचोड़ हृदय का
सम्पूर्ण सुमन को मिलता

मधु-धाम इसी सन्ध्या में
संयम का फूल खिला ले
सरि-सा सागर से मिल के
शशि—किरण यहीं बुला ले

जैसे उनके अन्तर का
मानव था स्वयं ललकता
मुख-कंज किन्तु उनका था
संयम से भरा झलकता

थे सावधान आँखों में
मानस न उमड़ आ जावें
प्राणों को रहे सँभाले
साँसें न भेद दे जावें

रसना सभीत कंपित थी
रद—संपुट फूट रहे थे
जैसे कि अदम संयम का
हँस के पी घूँट रहे थे

मन कहता तू "हाँ" कर ले
शोभुषी आँख दिखलाती
इस संकट में उनकी थी
रसना – कर्मठी कँप जाती

संतप्त भाल से दिन के
प्रस्वेद—बिन्दु जो छलके
हैं झालर बने झलकते
निशि के नीले अंचल के

निशचन्द्र निशा—लतिका में
नक्षत्र फूलते जितने
प्रत्यूष—काल के कर से
बँच पाते तापस कितने ?

उर मे अनन्त आशाये
कलिकाये जोड़ आतीं
यौवन समर्थ पाने मे
पहले ही तोड़ी जातीं

सर्वस्व लुटा जाता है
लूटते विभव—मतवाले
क्या चलती उनकी, होते
जो रिक्तोदर रखवाले ?

नक्षत्र मिटा करते हैं
नभ वैभव सब खो देता
प्रत्यूष सदा कुसुमो में
हँसते—हँसते रो देता

मधुहास—रुदन जीवन में
कुछ ऐसा घुला—मिला है
ले ओस—अश्रु—जल जैसा
यह शरत—सरोज खिला है

संयोग—विरह जीवन के
दो सुघर सत्य हैं ऐसे
संसार—विहंगम के दो
सित—असित पक्ष हैं जैसे

है उड़नशील साँसों का
क्षण—भंगु शरीर बसेरा
जीवन पतिष्णु पतझड़ के
चंचल पल्लव का डेरा

सुकुमार सेज पर सुख की
अंकित अनीति—माला से
जर्जर संसार विभव का
जलता अतृप्ति—ज्वाला से

सुख दुख दोनों तब तक हैं
जब तक न पीन हो पावें
तब तक ही निशा तमिस्रा
जब तक न अमा आ जावे

सुख माँग रहा था हमसे
दुख की झोली फैलाये
"अक्षय हो कोष तुम्हारा
कुछ भीख हमें मिल जाये"

शीतलता शशि में कितनी
कह विरह—विहंग सकेगा
दाहकता दीपशिखा की
लो पूछ, पतंग कहेगा

सुधि में सुभास वैसा ही
है बैठा इन्दु अमल सा
युग बीत अनन्त गया है
जिसकी छाया में पल सा

संतोष - बिन्दु दें तुमको
मेरे अभाव के जलधर
सुख—सुख धोते वह जायें
दुख-जन्य जगत के निर्झर

आनन्द — विषाद — रँगीले
पुलिनों का चुम्बन करती
जग—जीवन की सरितायें
ले तिनके चंचल बहतीं

होता दुरन्त दिनकर का
अवसान इन्दु का होता
होते तुम भले अकेले
पथ एक हमारा होता

जग—जीवन की वापी में
आकूल अपंक तरल हो
जिसकी पलङ्ग पर फूला
कोई मकरन्द—कमल हो

ओ नभ के दृग्देशी
शशि ! शीतल किरणों वाले !
पीकर तेरी किरणें क्यों
होते चकोर मतवाले ?

इस जीवन की डाली पर
दो डाल भले ही घेरा
दुलभ न शेष जगती को
पावन प्रकाश हो तेरा

सौन्दर्य सुभग शशि तेरा
सौभाग्य बने जग का भी
यह मंगल रूप जगत के
मंगल प्रदीप मग का भी

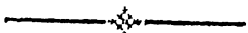

पौरुष प्रत्येक पुरुष का
कोदण्ड कर्मवाला हो
विश्रान्ति—वेलि नारी के
मन की प्रफुल्ल माला हो।

सब के हो सविध सुरंगा
सर्वदा सदंगा नारी
जिस के विलास—मन्दिर का
हो पावन पुरुष पुजारी